संकलित



संकलिता

सम्पादक

आनन्दकुमार

रामप्रसाद एण्ड संस : आगरा–३

मूल्य : दो रुपया पचास पैसे

आगरा पॉपूलर प्रेस, आगरा ।

भूमिका

प्रस्तुत संग्रह स्नातक-पूर्व परीक्षा के छात्र छात्राओं के लिए तैयार किया गया है। पाठों का चुनाव करते समय सरलता, सरसता, सुरुचि, सुन्दरता तथा साहित्यिकता का विशेष ध्यान रखा गया है। सम्पादक का यह प्रयत्न है कि इन पाठों को विद्यार्थी केवल परीक्षा तक ही नहीं उसके बाद भी याद रखें। ये पाठ उनके जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ जाएँ। गद्य और पद्य, और विशेषकर पद्य में प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के कृतिकारों की रोचक रचनाएँ संग्रहीत की गई हैं। यदि इनसे विद्यार्थी हिन्दी के अध्ययन की ओर ज्यादा प्रेम से आगे बढ़ सके तो हम अपना प्रयास सफल समझेंगे। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए लेखक-परिचय और आलोचना के कुछ पृष्ठ हमने बढ़ा दिये हैं। अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। इस संग्रह में जिन महानुभावों की रचनाएँ चुनी गई हैं उनके प्रति हम आभार प्रदर्शन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

—सम्पादक

पाठावली

गद्य-खण्ड

पद्य-खण्ड

: १ :

श्रम का महत्त्व

[सरदार पूर्णसिंह]

सरदार पूर्णसिंह का जीवन-काल १८८१ से लेकर १९३२ तक है। यद्यपि आपके निबन्धों की संख्या चार-पाँच ही है फिर भी आपकी गणना हिन्दी के प्रमुख निबन्धकारों में होती है। आपकी शैली भावपूर्ण है और पाठक के मन को मोह लेती है। विषय का सजीव चित्र पेश करने में आप बड़े कुशल हैं।

'श्रम का महत्त्व' निबन्ध में मजदूरी तथा परिश्रम की ओर एक नया दृष्टिकोण पाठक के सम्मुख रखा गया है। श्रम को नीच कर्म समझने से मनुष्य-जाति का शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक ह्रास हुआ है। श्रम के गौरव को प्रस्थापित करने के लिए जिस वैचारिक क्रान्ति की आवश्यकता है उसकी ओर यहाँ निर्देश किया गया है। निबन्ध मानवतावादी विचारों से ओत-प्रोत है। इनके अन्य निबन्धों के नाम है—'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'पवित्रता', और 'कन्यादान'। प्रस्तुत निबन्ध 'मजदूरी और प्रेम' का संक्षिप्त रूप है।

आदमियों की तिजारत करना मूर्खों का काम है। सोने और लोहे के बदले मनुष्य को बेचना मना है। आजकल भाप की कलों का दाम तो हजारों रुपया है, परन्तु मनुष्य कौड़ी के सौ-सौ बिकते हैं। सोने और चाँदी की प्राप्ति से जीवन का आनन्द नहीं मिल सकता। सच्चा आनन्द तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाए तो फिर स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा नहीं। मनुष्य पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। मंदिर और गिरजे में क्या रखा है? ईंट, पत्थर, चूना कुछ ही कहो; आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मन्दिर, मस्जिद, गिरजा और पोथी में न

करेंगे अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करें। यही आर्ट है—यही धर्म है। मनुष्य के हाथ ही से तो ईश्वर के दर्शन कराने वाले निकलते हैं। मनुष्य और मनुष्य की मजदूरी का तिरस्कार करना नास्तिकता है। बिना काम, बिना मजदूरी, बिना हाथ के कला कौशल के विचार और चिन्तन किस काम के ! सभी देशों के इतिहास से सिद्ध है कि निकम्मे पादरियों, मौलवियों, पण्डितों और साधुओं का दान के अन्न पर पला हुआ ईश्वर-चिन्तन अन्त में पाप, आलस्य और भ्रष्टाचार में परिवर्तित हो जाता है। जिन देशों में हाथ और मुँह पर मजदूरी की धूल नहीं पड़ने पाती वे धर्म और कला-कौशल में कभी उन्नति नहीं कर सकते। पद्मासन निकम्मे सिद्ध हो चुके हैं। वे आसन ईश्वर-प्राप्ति करा सकते हैं, जिनसे जोतने, बोने, काटने और मजदूरी का काम लिया जाता है। लकड़ी, ईंट, पत्थर को मूर्तिमान करने वाले लुहार, बढ़ई, चमार तथा किसान आदि वैसे ही पुरुष हैं जैसे कवि, महात्मा और योगी आदि। उत्तम से उत्तम और नीच-से-नीच काम सब-के-सब प्रेम शरीर के अंग हैं।

निकम्मे रह कर मनुष्य की चिन्तन-शक्ति थक गई है। विस्तरों और आसनों पर सोते और बैठे मन के घोड़े हार गये हैं। सारा जीवन निचुड़ चुका है। स्वप्न पुराने हो चुके हैं। आजकल की कविता में नयापन नहीं। उसमें पुराने जमाने की कविता की पुनरावृत्ति-मात्र है। अब तो एक नए प्रकार का कला-कौशल-पूर्ण संगीत-साहित्य संसार में प्रचलित होने वाला है। यदि वह प्रचलित न हुआ तो मशीनों के पहियों के नीचे दबकर हमें मरा समझिए। यह नया साहित्य मजदूरों के हृदय से निकलेगा। उन मजदूरों के कंठ से नई कविता निकलेगी जो अपने जीवन में आनन्द के साथ खेत की मेंड़ों का, कपड़े के तागों का, जूते के टाँकों का, लकड़ी के रेशों का, पत्थर की नसों का भेद-भाव दूर कर देंगे। हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर टोकरी, नंगे सिर और नंगे पाँव, धूल से लिपटे और कीचड़ से रंगे हुए बेजवान कवि जंगल में लकड़ी काटेंगे तब लकड़ी काटने का शब्द उनके असभ्य स्वरों से मिश्रित होकर वायुयान पर चढ़ दसों

दिशाओं में ऐसा अद्भुत गान करेगा कि भविष्यत् के कलावन्तों के लिए वही ध्रुपद और मल्हार का काम देगा। चरखा कातनेवाली स्त्रियों के गीत संसार के सभी देशों के कौमी गीत होंगे। मजदूरों की मजदूरी की यथार्थ पूजा होगी। कला-रूपी धर्म की तभी वृद्धि होगी। तभी नये कवि पैदा होंगे; तभी नये औलियों का उद्भव होगा। परन्तु ये सब-के-सब मजदूरों के दूध से पलेंगे। धर्म, योग, शुद्धाचरण, सभ्यता और कविता आदि के फूल इन्हीं मजदूर-ऋषियों के उद्यान में प्रफुल्लित होंगे।

× × ×

निकम्मे बैठे हुए चिन्तन करते रहना, अथवा बिना काम किये शुद्ध विचार का दावा करना, मानो सोते-सोते खर्राटे मारना है। जब तक जीवन के अरण्य में पादरी, मौलवी, पंडित और साधु-संन्यासी हल, कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करें तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं; तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि, अनन्तकाल बीत जाने तक मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनके खेल बासी, उनका विश्वास बासी और उनका खुदा बासी हो गया है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस साल के गुलाब के फूल भी वैसे ही हैं जैसे पिछले साल के थे। परन्तु इस साल वाले ताजे हैं। इनकी लाली नई है, इनकी सुगन्धि भी इन्हीं की अपनी है। जीवन के नियम नहीं पलटते, वे सदा एक से-ही रहते हैं। परन्तु मजदूरी करने से मनुष्य को नया और ताजा खुदा नजर आने लगता है।

× × ×

मजदूरी करना जीवन-यात्रा का आध्यात्मिक नियम है। 'जोन ऑव आर्क' की फकीरी और भेड़ें चराना, 'टॉलसटॉय' का त्याग और जूते गाँठना, 'उमर खैयाम' का प्रसन्नतापूर्वक तम्बू सीते फिरना, 'खलीफा उमर' का अपने रंगमहलों में चटाई बुनना, ब्रह्मज्ञानी 'कबीर' और 'रैदास' का शूद्र होना, 'गुरु नानक' और भगवान् 'श्रीकृष्ण' का मूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकना—सच्ची फकीरी का अनमोल भूषण है।

मजदूरी करने से हृदय पवित्र होता है, संकल्प दिव्य लोकान्तर में विचरते हैं। हाथ की मजदूरी से सच्चे ऐश्वर्य की उन्नति होती है। जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हजारों की कीमत का बना देती हैं, नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों और दृश्यों को अपनी सुई से कपड़े के ऊपर अंकित कर देती हैं। जापान-निवासी कागज, लकड़ी और पत्थर की बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाते हैं। करोड़ों रुपये के हाथ के बने हुए जापानी खिलौने विदेशों में बिकते हैं। हाथ की बनी हुई जापानी चीजें मशीन से बनी हुई चीजों को मात करती हैं। संसार के सभी बाजारों में उनकी बड़ी माँग रहती है। पश्चिमी देशों के लोग हाथ की बनी हुई जापान की अद्भुत वस्तुओं पर जान देते हैं। एक जापानी तत्वज्ञानी का कथन है कि हमारी दस करोड़ उँगलियाँ सारे काम करती हैं। उन उँगलियों ही के बल से, सम्भव है हम जगत को जीत लें। जब तक धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी उन्नत नहीं होती, तब तक भारतवर्ष की ही क्या किसी देश या जाति की दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। यदि भारत के तीस करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिलकर कारीगरी का काम करने लगें। तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप-ही-आप आ गिरे।

× × ×

इस देश में जब मजदूरी का आदर होता था तब इसी आकाश के नीचे बैठे हुए मजदूरों के हाथों ने भगवान् बुद्ध के निर्वाण-सुख को पत्थर पर इस तरह जड़ा था कि इतना काल बीत जाने पर, पत्थर की मूर्ति के ही दर्शन से ऐसी शान्ति प्राप्त होती है जैसी कि स्वयं भगवान् बुद्ध के दर्शन से होती। मुँह, हाथ, पाँव इत्यादि का गढ़ देना साधारण मजदूरी है परन्तु मन के गुप्त भावों और अन्तःकरण की कोमलता तथा जीवन की सभ्यता को प्रत्यक्ष प्रकट कर देना प्रेम-मजदूरी है. शिवजी के ताण्डव-नृत्य को और पार्वतीजी के मुख की शोभा को पत्थरों की सहायता से वर्णन करना जड़ को चैतन्य बना देना है। इस देश में कारीगरी का

बहुत दिनों से अभाव है। महमूद ने जो सोमनाथ मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ तोड़ीं उससे उसकी कुछ भी वीरता सिद्ध नहीं होती। उन मूर्तियों को तो हर कोई तोड़ सकता था। उसकी वीरता की प्रशंसा तब होती जब वह यूनान की प्रेम-मजदूरी, अर्थात् वहाँ वालों के हाथ की अद्वितीय कारीगरी प्रकट करने वाली मूर्तियाँ तोड़ने का साहस कर सकता। वहाँ की मूर्तियाँ तो बोल रही हैं—वे जीती जागती हैं, मुर्दा नहीं। इस समय देवस्थानों में स्थापित मूर्तियाँ देखकर अपने देश की आध्यात्मिक दुर्दशा पर लज्जा आती है। उनसे तो यदि अनगढ़ पत्थर रख दिये जाते तो अधिक शोभा पाते। जब हमारे यहाँ के मजदूर, चित्रकार तथा लकड़ी और पत्थर पर काम करनेवाले भूखों मरते हैं तब हमारे मन्दिरों की मूर्तियाँ कैसे सुन्दर हो सकती हैं? ऐसे कारीगर तो यहाँ शूद्र के नाम से पुकारे जाते हैं। याद रखिए, बिना शूद्र-पूजा के मूर्ति पूजा किंवा कृष्ण और शालिग्राम की पूजा होना असम्भव है। सच तो यह है कि हमारे सारे धर्म-कर्म बासी ब्राह्मणत्व के छिछोरेपन से दरिद्रता को प्राप्त हो रहे हैं। यही कारण है जो आज हम जातीय दरिद्रता से पीड़ित हैं।

पश्चिमी सभ्यता मुख मोड़ रही है। वह एक नया आदर्श देख रही है। अब उसकी चाल बदलने लगी है। वह कलों की पूजा छोड़कर मनुष्यों की पूजा को अपना आदर्श बना रही है। इस आदर्श के दर्शाने वाले देवता रस्किन और टॉलस्टॉय आदि हैं। पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है। वहाँ के गम्भीर विचार वाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेने वाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस नये प्रभात का पूर्व-ज्ञान हुआ। और, हो क्यों न? इंजिनों के पहिये के नीचे दबकर वहाँ-वालों के भाई-बहन—नहीं-नहीं उनकी सारी जाति—पिस गई; उनके जीवन के धुरे टूट गए; उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक-ही-दो स्थानों में एकत्र हो गया। साधारण लोग मर रहे हैं। मजदूरों के हाथ-

पाँव फट रहे हैं, लहू चल रहा है। सरदी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ दरिद्रता का अखंड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम दृश्य।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'श्रम का महत्त्व' लेख का सारांश अपनी भाषा में लिखिए।

२. 'मशीन-युग' में हमारा उत्थान हुआ अथवा पतन ?

३. श्रम से आत्म-शुद्धि का क्या सम्बन्ध है ?

४. सरदार पूर्णसिंह की भाषा-शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

५. लेखक की यह रचना किस काल की है ? इसका उत्तर देते हुए सिद्ध कीजिए कि साहित्य अपने युग का दर्पण होता है।

: २ :

परीक्षा

[प्रेमचन्द]

हिन्दी के उपन्यास-सम्राट् तथा चोटी के कहानी-लेखक का जन्म १८८० में काशी के पास हुआ और १९३६ में उनका देहान्त हुआ। इनके साहित्य में भारतीय समाज का सजीव चित्रण मिलता है, अतः आलोचक इनकी तुलना टॉल्स्टॉय और गोर्की के साथ करते हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थों में 'गोदान', 'रंगभूमि', 'गबन', 'सेवासदन' प्रमुख उपन्यास हैं; और 'मानसरोवर' के आठ भागों में लगभग तीन सौ कहानियाँ संग्रहीत हैं।

आपकी भाषा सरस तथा सरल है। जगह-जगह मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से और उर्दू-फारसी के जानदार शब्दों के इस्तेमाल से उसमें प्रवाह और चुस्ती की बड़ी मस्ती दिखाई देती है। उनके-जैसा दूसरा लेखक हिन्दी में पैदा नहीं हुआ। मानव तथा समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण भी बड़ा स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण था। यह कहना उचित ही होगा कि प्रेमचन्द ने आधुनिक हिन्दी-कहानी को पुष्ट किया।

प्रस्तुत कहानी में आधुनिक शिक्षा-पद्धति के खोखलेपन की ओर संकेत करके चरित्र-निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तब परमात्मा की याद आई। जाकर महाराज से विनय की कि दीनबन्धु ! दास ने श्रीमान् की सेवा चालीस साल तक की, अब कुछ दिन परमात्मा की सेवा करने की आज्ञा चाहता हूँ। दूसरे, अब अवस्था भी ढल गई, राज-काज संभालने की शक्ति नहीं रही, कहीं भूल-चूक हो जाए तो बुढ़ापे में दाग लगे। सारी जिन्दगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाए।

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीति-कुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया; लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पर शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान आप ही को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की जरूरत है; जो सज्जन अपने को इस पद के योग्य समझें वे वर्तमान दीवान सरदार सुजानसिंह की सेवा में उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों; मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है। मन्दाग्नि के मरीज को यहाँ तक कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। एक महीने तक उम्मीदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देखभाल की जायगी; विद्या का कम, परन्तु कर्तव्य का अधिक विचार किया जाएगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे वह इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।

× × ×

इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं? केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नये-नये और रंग-बिरंग के मनुष्य दिखलाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मीदवारों का एक मेला सा उतरता। कोई पंजाब से चला आता था, कोई मद्रास से। कोई नए फैशन का प्रेमी, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। पण्डितों और मौलवियों को भी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम को रोया करते थे, यहाँ उसकी कोई जरूरत नहीं थी। रंगीन एमामे और चोगे और नाना प्रकार के अँगरखे और कंटोप देवगढ़ में अपनी सज-धज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी, क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद से परदा तो ढका रहता है।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरे में बैठे हुए रोजेदार मुसलमानों की तरह महीने के दिन गिना करते थे। हर-एक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखलाने की कोशिश करता था। मिस्टर 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मिस्टर 'ब' को हुक्का पीने की लत थी, पर आजकल बहुत रात गए किवाड़ बन्द करके अँधेरे में सिगार पीते थे। मिस्टर 'द', 'स' और 'ज' से उनके घरों पर नौकरों की नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल 'आप' और 'जनाब' के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे, हक्सले के उपासक, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मिस्टर 'ल' को किताबों से घृणा थी; परन्तु आजकल वे बड़े बड़े ग्रन्थ देखने में—पढ़ने में—डूबे रहते थे। जिससे बात कीजिए, वह नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम देता था। शर्माजी घड़ी रात से ही वेद-मन्त्र पढ़ने लगते थे और मौलवी साहब को तो नमाज और तलावत के सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है!

लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा हुआ है।

× × ×

एक दिन नये फैशन वालों को सूझी कि आपस में 'हॉकी' का खेल हो जाए। यह प्रस्ताव हॉकी के मँजे हुए खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है। इसे क्यों छिपा रखें। सम्भव है, कुछ हाथों की सफाई ही काम कर जाए। चलिए, तय हो गया, कोर्ट बन गए, खेल शुरू हो गया और गेंद किसी दफ्तर के अप्रेंटिस की तरह ठोकर खाने लगी।

रियासत देवगढ़ में यह खेल बिलकुल निराली बात थी। पढ़े-लिखे भलेमानुस लोग शतरंज और ताश-जैसे गम्भीर खेल खेलते थे। दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे के लोग जब गेंद को लेकर तेजी से उड़ते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आ रही है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे कि मानो लोहे की दीवार है।

सन्ध्या तक यही धूम-धाम रही, लोग पसीने में तर हो गए। खून की गरमी आँख और चेहरे से झलक रही थी। हाँपते-हाँपते बेदम हो गए लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका।

अँधेरा हो गया था। इस मैदान से जरा दूर हटकर एक नाला था। उस पर कोई पुल न था। पथिकों को नाले में से चलकर आना पड़ता। खेल अभी बन्द ही हुआ था और खिलाड़ी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिये हुए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीच थी और कुछ उसकी चढ़ाई इतनी ऊँची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहियों को हाथ से ढकेलता, लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमजोर। गाड़ी ऊपर को न चढ़ती और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बार-बार जोर लगाता और बार-बार झुँझलाकर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहाँ कोई सहायक नजर न आता था। गाड़ी को अकेले छोड़कर कहीं जा भी न सकता था। बड़ी आपत्ति में फँसा हुआ था। इसी बीच में खिलाड़ी हाथों में डण्डे लिये झूमते-झामते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ सहमी हुई आँखों से देखा। परन्तु किसी से मदद माँगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा मगर बन्द आँखों से, जिनमें

सहानुभूति न थी, स्वार्थ था, मद था, मगर उदारता व वात्सल्य का नाम तक न था।

× × ×

लेकिन समूह में एक ऐसा मनुष्य भी था जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हॉकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गई थी। लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। ठिठक गया। उसे किसान की सूरत देखते ही सब बातें ज्ञात हो गईं। डण्डा एक किनारे रख दिया। कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला—"मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूँ?"

किसान ने देखा एक गठे हुए बदन का लम्बा आदमी सामने खड़ा है। डरकर बोला—"हजूर! मैं आपसे कैसे कहूँ?"

युवक ने कहा—"मालूम होता है तुम यहाँ बड़ी देर से फँसे हुए हो। अच्छा, तुम जाकर बैलों को साधो, मैं पहिए को ढकेलता हूँ। अभी गाड़ी ऊपर जाती है।"

किसान गाड़ी पर जा बैठा। युवक ने जोर लगाकर पहियों को उकसाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटने तक जमीन में गढ़ गया, लेकिन हिम्मत न हारी। उसने फिर जोर किया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा। बैलों को सहारा मिला। हिम्मत बँध गई। उन्होंने कन्धे झुकाकर एक बार जोर किया तो गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, बोला—"महाराज! आपने आज मुझे उबार लिया नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।"

युवक ने हँसकर कहा—"अब मुझे कुछ इनाम देते हो?"

किसान ने गम्भीर भाव से कहा—"नारायण चाहेंगे तो दीवानी आपको ही मिलेगी।"

युवक ने किसान की तरफ गौर से देखा। उसके मन में एक सन्देह

हुआ, क्या यही सुजानसिंह तो नहीं है ? आवाज मिलती है। चेहरा-मोहरा भी वही। किसान ने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। शायद उसके दिल के सन्देह को भाँप गया। मुस्कराकर बोला—"गहरे पानी पैठने से ही मोती मिलता है।"

निदान महीना पूरा हुआ। चुनाव का दिन आ पहुँचा। उम्मीदवार लोग प्रातःकाल ही से अपनी किस्मतों का फैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक चेहरे पर आशा और निराशा के रंग आते जाते थे। नहीं मालूम आज किसके नसीब जागेंगे ! न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपा दृष्टि होगी !

सन्ध्या समय राजा साहब का दरबार सजाया गया। शहर के रईस और धनाढ्य लोग, राज्य के कर्मचारी और दरबारी एवं दीवानी के उम्मीदवारों का समूह, सब रंग-बिरंगी सज-धज बनाये दरबार में आ विराजे। उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

तब सरदार सुजानसिंह ने खड़े होकर कहा—"मेरी दीवानी के उम्मीदवार महाशयो ! मैंने आप लोगों को जो कुछ कष्ट दिया हो, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। मुझे इस पद के लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता थी जिसके हृदय में दया हो और साथ-साथ आत्मबल। हृदय वह जो उदार हो। आत्मबल वह जो वीरता के साथ आपत्ति का सामना करे और इस रियासत के सौभाग्य से हमको ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुणों वाले संसार में कम हैं, और जो हैं वे कीर्ति और मान के शिखर पर बैठे हुए हैं। उन तक हमारी पहुँच नहीं। मैं रियासत को पण्डित जानकीनाथ-सा दीवान पाने पर बधाई देता हूँ।"

रियासत के कर्मचारियों और रहीसों ने जानकीनाथ की तरफ देखा। उम्मीदवार दल की आँखें भी उठीं, मगर उन आँखों में सत्कार था, इन आँखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फरमाया—"आप लोगों को स्वीकार करने में

आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं जख्मी होने पर भी एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकाल कर नाले के ऊपर चढ़ा दे उसके हृदय में साहस, आत्मबल और उदारता का वास है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सतायेगा। उसका संकल्प दृढ़ है जो उसके चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जाए, परन्तु दया और धर्म के मार्ग से कभी न हटेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. परीक्षा कहानी का सारांश लिखिये।

२. प्रस्तुत कहानी में जो परीक्षा ली गई है उस पर अपनी सम्मति प्रकट कीजिए।

३. प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

४. कहानी कला और शैली की दृष्टि से इस कहानी की समीक्षा करते हुए यह सिद्ध कीजिए कि प्रेमचन्द की कहानियाँ आदर्शोन्मुखी होती हैं।

५. सरदार सुजानसिंह एवं मुख्य पात्र का चरित्र चित्रण कीजिए।

: ३ :

आत्म-निर्भरता

[रामचन्द्र शुक्ल]

आपका जीवन काल १८८४ से लेकर १९४१ तक है। आप हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार तथा आलोचक थे। तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग होने पर भी आपकी भाषा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। वाक्य नपे-तुले और परिमार्जित होते हैं, विचार सुलझे हुए और प्रौढ़। 'चिन्तामणि' में संग्रहीत आपके निबन्धों की प्रत्येक पंक्तिपर आपकी चिन्तनशीलता तथा सहृदयता की छाप है। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

प्रस्तुत निबन्ध में बताया गया है कि आत्म-निर्भरता अथवा स्वावलम्बन एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को सबल और दृढ़ बनाती है। संसार के सभी महापुरुष इसी गुण के कारण अपने महान् कार्यों में सफल हुए हैं। जिनमें आत्म-निर्भरता का अभाव रहता है वे प्रत्येक अवसर पर दूसरों के मुख की ओर देखते हैं। उनका अपना कोई निश्चय अथवा सिद्धान्त नही रहता। ऐसे लोग समाज और देश के लिए अनुपयोगी हाने के साथ-साथ कष्टप्रद भी हो जाते हैं। और वे अपने को ही नहीं समाज को भी हानि पहुँचाते हैं।

आत्म-निर्भरता के लिए व्यक्ति में मानसिह स्वतंत्रता का होना आवश्यक है। इसके बिना चरित्र-निर्माण असम्भव है] और चरित्रहीन व्यक्ति कैसे सुनागरिक हो सकता है ?

विद्वानों का कथन बहुत ठीक है कि नम्रता ही स्वतन्त्रता की धात्री व माता है। लोग भ्रमवश अहंकार-वृत्ति को उसकी माता समझ बैठते

हैं, पर है वह उसकी सौतेली माता, जो उसका सत्यानाश करती है। चाहे यह सम्बन्ध ठीक हो या न हो, पर इस बात को सब लोग मानते हैं कि आत्मसंस्कार के लिए थोड़ी-बहुत मानसिक स्वतन्त्रता परम आवश्यक है—चाहे उस स्वतन्त्रता में अभिमान और नम्रता दोनों का मेल हो और चाहे वह नम्रता ही से उत्पन्न हो। यह बात तो निश्चित है कि जो मनुष्य मर्यादापूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है उसके लिए वह गुण अनिवार्य है जिससे आत्म-निर्भरता आती है और जिससे अपने पैरों के बल खड़ा होना आता है। युवा पुरुष को यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि वह बहुत कम बातें जानता है, अपने ही आदर्श से वह बहुत नीचे है और उसकी आकांक्षाएँ उसकी योग्यता से कहीं बढ़ी हुई हैं। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने बड़ों का सम्मान करे, छोटों और बराबरवालों से कोमलता का व्यवहार करे। ये बातें आत्म-मर्यादा के लिए आवश्यक हैं। यह सारा संसार, जो कुछ हम हैं और जो-कुछ हमारा है—हमारा शरीर, हमारी आत्मा, हमारे कर्म, हमारे भोग, हमारी घर की और बाहर की दशा, हमारे बहुत-से अव-गुण और थोड़े-से गुण—सब इसी बात की आवश्यकता प्रकट करते हैं कि हमें अपनी आत्मा को नम्र रखना चाहिए। नम्रता से मेरा अभिप्राय दब्बूपन से नहीं है, जिसके कारण बातचीत में मनुष्य दूसरों का मुँह ताकता रहता है, जिससे उसका संकल्प क्षीण और उसकी प्रज्ञा मंद हो जाती है, जिसके कारण वह आगे बढ़ने के समय भी पीछे रहता है और अवसर पड़ने पर चटपट किसी बात का निर्णय नहीं कर सकता। मनुष्य का बेड़ा अपने ही हाथ में है, उसे वह चाहे जिधर लगाये। सच्ची आत्मा वही है जो प्रत्येक दशा में प्रत्येक स्थिति के बीच अपनी राह आप निकालती है।

अब तुम्हें क्या करना चाहिए, इसका ठीक-ठीक उत्तर तुम्हीं को देना होगा, दूसरा कोई नहीं दे सकता। कैसा भी विश्वासपात्र मित्र हो, तुम्हारे इस काम को अपने ऊपर नहीं ले सकता। हम अनुभवी लोगों की बातों को आदर के साथ सुनें, बुद्धिमानों की सलाह को कृतज्ञतापूर्वक

मानें पर इस बात को निश्चित समझकर कि हमारे कर्मों ही से हमारी रक्षा व हमारा पतन होगा, हमें अपने विचार और निर्णय की स्वतंत्रता को दृढ़तापूर्वक बनाए रखना चाहिए, जिस पुरुष की दृष्टि सदा नीची रहती है, उसका सिर कभी ऊपर न होगा। नीची दृष्टि रखने से यद्यपि रास्ते पर रहेंगे, पर इस बात को न देखेंगे कि वह रास्ता कहाँ ले जाता है। चित्त की स्वतन्त्रता का मतलब चेष्टा की कठोरता या प्रकृति की उग्रता नहीं है। अपने व्यवहार में कोमल रहो और अपने उद्देश्यों को उच्च रखो, इस प्रकार नम्र और उच्चाशय दोनों बनो। अपने मन को कभी मरा हुआ न रखो। जितना ही जो मनुष्य अपना लक्ष्य ऊपर रखता है, उतना ही उसका तीर ऊपर जाता है।

संसार में ऐसे-ऐसे दृढ़चित्त मनुष्य हो गये हैं जिन्होंने मरते दम तक सत्य की टेक नहीं छोड़ी, अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। राजा हरिश्चन्द्र के ऊपर इतनी विपत्तियाँ आईं पर उन्होंने अपना सत्य नहीं छोड़ा। उनकी प्रतिज्ञा यही रही—

चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य विचार।।

महाराणा प्रतापसिंह जंगल-जंगल मारे-मारे फिरते थे, अपनी स्त्री और बच्चों को भूख से तड़पते देखते थे, परन्तु उन्होंने उन लोगों की बात न मानी जिन्होंने उन्हें अधीनतापूर्वक सन्धि करने की सम्मति दी; क्योंकि वे जानते थे कि अपनी मर्यादा की चिन्ता जितनी अपने को हो सकती है, उतनी दूसरे को नहीं। हकीकतराय नामक वीर बालक को देखो, जिसने जल्लाद की चमकती हुई तलवार गरदन पर देखकर भी काजी के सामने धर्म परित्याग करना स्वीकार न किया। सिक्ख गुरु गोविन्दसिंह के दोनों लड़के जीते-जी दीवार में चुन दिए गए, पर वे अपना धर्म छोड़ कर मुसलमान होने के नाम पर "नहीं-नहीं" करते रहे। एक बार एक रोमन राजनीतिज्ञ बलवाइयों के हाथ पड़ गया। बलवाइयों ने उससे व्यंग्यपूर्वक पूछा—"अब तेरा किला कहाँ है ?" उसने

हृदय पर हाथ रखकर उत्तर दिया, "यहाँ"। ज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए यही बड़ा भारी गढ़ है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो युवा पुरुष सब बातों में दूसरों का सहारा चाहते हैं, जो सदा एक-न-एक नया अगुवा ढूँढ़ा करते हैं और उसके अनुयायी बना करते हैं, वे आत्म-संस्कार के कार्य में उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें स्वयं विचार करना, अपनी सम्मति आप स्थिर करना, दूसरों की उचित बातों का मूल्य समझते हुए भी उनका अन्धभक्त न होना सीखना चाहिए। तुलसीदासजी को लोक में जो इतनी सर्वप्रियता और कीर्ति प्राप्त हुई, उनका दीर्घ जीवन इतना महत्त्वमय और शान्तिमय रहा, सब इसी मानसिक स्वतन्त्रता, निर्द्वन्द्वता और आत्म-निर्भरता के कारण। वहीं उनके समकालीन केशवदास को देखिए जो जीवन-भर विलासी राजाओं के हाथ की कठपुतली बने रहे, जिन्होंने आत्म-स्वातन्त्र्य की ओर कम ध्यान दिया और अन्त में आप अपनी बुरी गति की। एक इतिहासकार कहता है—"प्रत्येक मनुष्य का भाग्य उसके हाथ में है। प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह श्रेष्ठ रीति से कर सकता है। यही मैंने किया है और यदि अवसर मिले तो यही करूँ।" इसे चाहे स्वतन्त्रता कहो, चाहे आत्म-निर्भरता कहो, चाहे स्वावलम्बन कहो। यह वही भाव है जिससे मनुष्य और दास में भेद जान पड़ता है; यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से राम-लक्ष्मण ने घर से निकल बड़े पराक्रमी वीरों पर विजय प्राप्त की; यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से हनुमान ने अकेले सीता की खोज की; यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से कोलम्बस ने अमेरिका के समान बड़ा महाद्वीप ढूँढ़ निकाला। चित्त की इसी वृत्ति के बल पर सूरदास ने अकबर के बुलाने पर फतेहपुर सीकरी जाने से इनकार कर दिया और कहा था—

"कहा मोको सीकरी सों काम"

इस चित्त-वृत्ति के बल से मनुष्य इसलिए परिश्रम के साथ दिन काटता और दरिद्रता के दुःख को झेलता है जिससे उसे ज्ञान के अमित भण्डार में से थोड़ा-बहुत मिल जाए। इसी चित्त-वृत्ति के प्रभाव से हम प्रलोभनों का निवारण करके उन्हें पददलित करते हैं, कुमन्त्रणाओं का

तिरस्कार करते हैं और शुद्ध चरित्र के लोगों से प्रेम और उनकी रक्षा करते हैं। इसी चित्त-वृत्ति के प्रभाव से युवा पुरुष कार्यालयों में शान्त और सच्चे रह सकते हैं और उन लोगों की बातों में नहीं आ सकते जो आप अपनी मर्यादा खोकर दूसरों को भी अपने साथ गड्ढे में गिराना चाहते हैं। इसी चित्त-वृत्ति के प्रताप से बड़े-बड़े लोग ऐसे समयों में भी, जब कि उनके और साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया है, अपने महत्कार्यों में अग्रसर होते गए हैं और यह सिद्ध करने में समर्थ हुए हैं कि निपुण, उत्साही और परिश्रमी पुरुषों के लिए कोई अड़चन ऐसी नहीं जो कहे कि 'बस यहीं तक, और आगे न बढ़ना।' इसी चित्त-वृत्ति की दृढ़ता के सहारे दरिद्र लोग दरिद्रता से और अपढ़ लोग अज्ञता से निकल कर उन्नत हुए हैं तथा उद्योगी और अध्यवसायी लोगों ने अपनी समृद्धि का मार्ग निकाला है। इसी चित्त-वृत्ति के अवलम्बन से पुरुषसिंहों को यह कहने की क्षमता हुई है कि "मैं राह ढूँढूँगा या राह निकालूँगा" यही चित्त-वृत्ति थी जिसकी उत्तेजना से शिवाजी ने थोड़े-से वीर मराठे सिपाहियों को लेकर औरंगजेब की बड़ी भारी सेना पर छापा मारा और उसे तितर-बितर कर दिया। यही चित्त-वृत्ति थी जिसके सहारे एकलव्य बिना किसी गुरु या संगी-साथी के जंगल के बीच निशाने पर तीर-पर-तीर चलाता रहा और अन्त में एक बड़ा धनुर्धर हुआ। यही चित्त-वृत्ति है जो मनुष्य को सामान्य जनों से उच्च बनाती है, उसके जीवन को सार्थक और उद्देश्य-पूर्ण करती है तथा उसे उत्तम संस्कारों के ग्रहण करने के योग्य बनाती है। जिस मनुष्य की बुद्धि और चतुराई उसके दृढ़ हृदय के आश्रय पर ही स्थित रहती है, वह जीवन और कर्मक्षेत्र में स्वयं भी श्रेष्ठ और उत्तम रहता है और दूसरों को भी श्रेष्ठ और उत्तम बनाता है। प्रसिद्ध उपन्यासकार स्कॉट एक बार ऋण के बोझ से बिलकुल दब गया। मित्रों ने उसकी सहायता करनी चाही, पर उसने यह बात स्वीकार नहीं की और स्वयं अपनी प्रतिभा ही का सहारा लेकर अनेक उपन्यास थोड़े समय के बीच लिखकर लाखों रुपये का ऋण अपने सिर से उतार दिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. आत्म-निर्भरता पाठ का सारांश लिखिए।

२. आत्म-निर्भरता में मानसिक स्वतन्त्रता का क्या योग रहता है ? समझाइए।

३. आत्म-निर्भर बनने के लिए नवयुवकों को किन बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है ? स्पष्ट कीजिये।

४. किन्हीं दो आत्म-निर्भर व्यक्तियों के जीवन पर प्रकाश डालिए।

५. पंडित रामचन्द्र शुक्ल की भाषा-शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

: ४ :

न्याय-मन्त्री

[सुदर्शन]

आपका जन्म १८८६ में पंजाब में हुआ। आपका नाम बद्रीनाथ है, लेकिन आप अपने साहित्यिक उपनाम से प्रसिद्ध हैं। प्रेमचन्द की भाँति आप भी उर्दू से हिन्दी में आये हैं। आपकी कहानी-कला भी प्रेमचन्द की कहानी-कला का अनुसरण करती है और उसे लोकप्रियता भी प्राप्त हुई। 'सुदर्शन-सुधा', 'पनघट' और 'तीर्थयात्रा' आपके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। कहानियों के अतिरिक्त आपने नाटकों की रचना की है, जिनका प्रयोग चित्रपटों में भी हुआ है।

सुदर्शन आदर्शवादी कहानीकार हैं;' न्याय-मन्त्री' में बड़े ही नाटकीय वातावरण का निर्माण किया गया है। पाठक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। न्याय-मन्त्री की प्रतिज्ञा को कसौटी पर कसकर उसकी परीक्षा ली जाती है। कहानी का उद्देश्य यह दिखलाना है कि जो व्यक्ति तपे हुए सोने की भाँति अग्निपरीक्षा में सफल होते हैं वे ही गौरव के पात्र हैं।

यह घटना आज से २,५०० वर्ष पहले की है। एक दिन सन्ध्या-समय जब आकाश में बादल लहरा रहे थे, बुद्धगया नामक गाँव में एक परदेशी शिशुपाल ब्राह्मण के द्वार पर आया और नम्रता से बोला—"क्या मुझे रात काटने को स्थान मिल जाएगा ?"

शिशुपाल अपने गाँव में सबसे अधिक निर्धन थे। घोर दरिद्रता ने भूखे बैल की नाईं उनकी हड्डियों का पंजर निकाल रखा था। उनकी आजीविका थोड़ी-सी भूमि पर चलती थी। परन्तु फिर भी परदेशी को द्वार पर देखकर उनका मुख खिल गया, जैसे कमल सूर्य के उदय होने

पर खिल उठता है। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—"यह मेरा सौभाग्य है, आइए, पधारिए, अतिथि के चरणों से चौका पवित्र हो जायगा।"

परदेशी और ब्राह्मण दोनों अन्दर गए। भारत में अतिथिसत्कार की रीति बहुत प्रचलित थी। शिशुपाल के पुत्र ने अतिथि का सत्कार किया। परदेशी मुग्ध हो गया। उसने ब्राह्मण से कहा—"आपका पुत्र बड़े काम का मनुष्य है, उसकी सेवा से मैं प्रसन्न हुआ हूँ।"

शिशुपाल ने इस प्रकार सिर उठाया, जैसे किसी ने सर्प को छेड़ दिया हो और नाक-भौं चढ़ाकर उत्तर दिया—"आप हमारे अतिथि हैं, अन्यथा ब्राह्मण ऐसे शब्द नहीं सुन सकते।"

परदेशी ने अपनी भूल पर लज्जित होकर कहा—"क्षमा कीजिए, मेरा यह अभिप्राय न था; परन्तु आजकल वे ब्राह्मण कहाँ हैं, अब तो आँखें उनके लिए तरसती हैं।"

शिशुपाल ने उत्तर दिया—"ब्राह्मण तो अब भी हैं, कमी केवल क्षत्रियों की है।"

"मैं आपका अभिप्राय नहीं समझा ?"

शिशुपाल ने एक लम्बी-चौड़ी वक्तृता आरम्भ कर दी, जिसको सुनकर परदेशी चकित हो गया। उसकी बातें ऐसी युक्तियुक्त और प्रभावशाली थीं कि परदेशी उन पर मुग्ध हो गया। इस छोटे-से गाँव में ऐसा विद्वान, ऐसा तत्त्वदर्शी पण्डित हो सकता है, इसकी उसे कल्पना भी न थी। उसने शिशुपाल का युक्तियुक्त तर्क और शासन-पद्धति का इतना विशाल ज्ञान देखकर कहा—"मुझे खयाल न था कि गोबर में फूल खिला हुआ है। महाराज अशोक को पता लग जाए, तो आपको किसी ऊँची पदवी पर नियुक्त कर दें।"

शिशुपाल के शुष्क होठों पर मुस्कराहट आ गई। जिसका अन्तः-करण कुढ़ रहा हो, जिसके नेत्र आँसू बरसा रहे हों, जिसका मस्तिष्क अपने आपे में न हो, उसके होठों पर हँसी ऐसी भयानक प्रतीत होती है, जैसे श्मशान में चाँदनी, वरन् उससे भी अधिक। शिशुपाल की आँखें नीचे झुक गई। उन्होंने थोड़ी देर बाद सिर उठाया और कहा—

"आजकल बड़ा अन्याय हो रहा है। जब देखता हूँ मेरा रक्त उबलने लग जाता है।"

परदेशी ने पैंतरा बदलकर उत्तर दिया—"शेर-बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं।"

"रहने दो, मैं सब जानता हूँ।"

"दोष निकालना सुगम है, परन्तु कुछ करके दिखाना कठिन है।"

शिशुपाल ने अग्नि पर पड़े हुए पत्ते की नाईं झुलसकर उत्तर दिया—"अवसर मिले, तो दिखा दें कि न्याय किसे कहते हैं।"

"तो आप अवसर चाहते हैं?"

"हाँ, अवसर चाहता हूँ।"

"फिर तो कोई अन्याय न होगा?"

"सर्वथा न होगा।"

"कोई अपराधी दण्ड से न बचेगा?"

"कदापि नहीं बचेगा।"

परदेशी ने सहज भाव से कहा—"यह बहुत कठिन है।"

"ब्राह्मण के लिए कोई कठिन नहीं। मैं न्याय का डंका बजाकर दिखा दूँगा।"

परदेशी के मुख पर मुस्कराहट थी, नेत्रों में ज्योति। उसने हँसकर उत्तर दिया—"यदि मैं अशोक होता, तो आपकी मनसा पूरी कर देता।"

सहसा ब्राह्मण के हृदय में एक सन्देह उठा, परन्तु दूसरे ही क्षण में वह दूर हो गया जिस तरह वायु के प्रबल झोंके अभ्र-खण्ड को उड़ा ले जाते हैं।

× × ×

दूसरे दिन महाराज अशोक के दरबार में शिशुपाल बुलाया गया। इस समाचार से गाँव-भर में आग-सी लग गई। यह वह समय था, जब महाराज अशोक का राज्य आरम्भ हुआ था और दमन-नीति का प्रारम्भ था। उस समय महाराज ऐसे निर्दय और निष्ठुर थे कि ब्राह्मणों और स्त्रियों को भी फाँसी पर चढ़ा दिया करते थे। उनकी निष्ठुर दृष्टि से

बड़े-बड़े वीरों के भी प्राण सूख जाते थे। लोगों ने समझ लिया कि शिशुपाल के लिए यह बुलावा मृत्यु का सन्देश है। उनको पूरा-पूरा विश्वास था कि अब शिशुपाल जीवित न लौटेंगे। परिणाम यह हुआ कि शिशुपाल के सम्बन्धियों पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा, और वे फूट-फूट कर रोने लगे। लोगों ने धीरज बँधाना आरम्भ किया; परन्तु शिशुपाल के माथे पर बल न था। वे कहते थे—"जब मैंने कोई अपराध नहीं किया, राज्य के किसी कानून का प्रतिरोध नहीं किया, तब कोई मुझे क्यों फाँसी देने लगा? निस्सन्देह राजा ऐसा अन्यायी और अन्धा नहीं हो सकता कि निर्दोष ब्राह्मणों को दुःख देने लगे।" दुःख और कष्ट की लहरों के मध्य में वे इस प्रकार मौन खड़े थे, जिस प्रकार समुद्र की शिला। उन्होंने पुत्र और स्त्री को समझाया, और पाटलिपुत्र की ओर चले।

साँझ हो गई थी, जब शिशुपाल पाटलिपुत्र पहुँचे। और जब राजमहल में पहुँच गये, उस समय तक उनको किसी बात का भय न था; परन्तु राजमहल की चमक-दमक का ऐसा आतंक था कि उन पर भय छा गया, जिस प्रकार मनुष्य थोड़े जल में निर्भय रहता है, परन्तु गहराई में पहुँच कर घबरा जाता है। उसके हृदय में कई प्रकार के विचार उठने लगे। कभी सोचते, किसी ने कोई शिकायत कर दी हो। जो जी में आता है बेधड़क होकर कह दिया करता हूँ, कहीं इसी का फल न भुगतना पड़े; कई शत्रु हैं। कभी सोचते वह परदेशी पता नहीं कौन था? हो सकता है, कोई गुप्तचर ही हो और यह आग उसी की लगाई हो! तब तो उसने सब-कुछ कह दिया होगा। कैसी मूर्खता की जो एक अपरिचित से घुल-मिलकर बातें करता रहा, अब पछता रहा हूँ। कभी सोचते, कदाचित् मेरी दरिद्रता की कहानी यहाँ तक पहुँच गई हो, और महाराज ने मुझे कुछ देने को बुला भेजा हो, यह भी तो हो सकता है। इस विचार से हृदय-कमल खिल जाता, परन्तु फिर दूसरे विचार से मुरझा जाता। इतने में प्रतिहार ने कहा—"महाराज आ रहे हैं।"

शिशुपाल का कलेजा धड़कने लगा। उनको ऐसा प्रतीत हुआ, मानो

प्राण होंठों तक आ गये हैं। राजा का कितना प्रताप होता है, इसका पहली बार अनुभव हुआ। दृष्टि द्वार की ओर जम गई। महाराज अशोक राजकीय ठाठ से कमरे में आये और मुस्कराते हुए बोले—

"ब्राह्मण देवता, मुझे तो आपने पहचान ही लिया होगा?"

शिशुपाल घबराकर खड़े हो गये। इस समय उनका रोम-रोम काँप रहा था, ये वही थे।

× × ×

हाँ, ये वही थे। शिशुपाल काँपकर रह गए। कौन जानता था कि शीतकाल की रात को एक ब्राह्मण के यहाँ आश्रय लेने वाला परदेशी भारत का सम्राट् हो सकता है। शिशुपाल ने तुरन्त ही अपने हृदय को स्थिर कर लिया और कहा—"मुझे पता न था कि आप ही महाराज हैं, अन्यथा इतनी स्वतन्त्रता से बातचीत न करता।"

महाराज अशोक बोले—"हूँ!"

"परन्तु मैंने कोई बात बढ़ाकर नहीं कही थी?"

"हूँ!"

"मैं प्रमाण दे सकता हूँ!"

महाराज ने कहा—"मैं नहीं चाहता।"

"तो मुझे क्या आज्ञा होती है?"

"मैं आपकी परीक्षा करना चाहता हूँ।"

शिशुपाल के हृदय में सहसा एक विचार उठा, क्या वह सच हो जायगा?

महाराज ने कहा—"आपने कहा था कि यदि मुझे अवसर दिया जाए, तो मैं न्याय का डंका बजा दूँगा। मैं आपकी इस विषय में परीक्षा करना चाहता हूँ। आप तैयार हैं?"

शिशुपाल ने हंस की तरह गर्दन ऊँची की, और कहा—"हाँ, यदि महाराज की यही इच्छा है, तो मैं तैयार हूँ।"

"कल प्रातःकाल से तुम न्याय-मन्त्री नियत किये जाते हो। सारे नगर पर तुम्हारा अधिकार होगा।"

"बहुत अच्छा !"

"पाटलिपुत्र की पुलिस का प्रत्येक अधिकारी तुम्हारे अधीन होगा, और शान्ति रखने का उत्तरदायित्व केवल तुम्हीं पर होगा।"

"बहुत अच्छा !"

"यदि कोई घटना हो गई अथवा कोई हत्या हो गई, तो इसका उत्तरदायित्व भी तुम पर होगा।"

"बहुत अच्छा !"

महाराज थोड़ी देर चुप रहे और फिर हाथ से अँगूठी उतारकर बोले—"यह राजमुद्रा है, तुम कल प्रातःकाल की पहली किरण के साथ न्याय-मंत्री समझे जाओगे। मैं देखूँगा तुम अपने आपको किस प्रकार सफल शासक सिद्ध कर सकते हो !"

× × ×

एक मास व्यतीत हो गया। न्याय-मंत्री के न्याय और सुप्रबन्ध की चारों ओर धूम मच गई। शिशुपाल ने नगर पर जादू डाल दिया है, ऐसा प्रतीत होता था। उन्होंने चोर-डाकुओं को इस प्रकार वश में कर लिया था, जिस प्रकार सर्प को बीन बजाकर सपेरा वश में कर लेता है। उन दिनों यह अवस्था थी कि लोग दरवाजे तक खुले छोड़ जाते थे, परन्तु किसी की हानि न होती थी। शिशुपाल का न्याय अन्धा और बहरा था, जो न सूरत देखता था, न सिफारिश सुनता था। वह केवल दण्ड देना जानता था और दण्ड भी शिक्षाप्रद। नगर की दशा में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ गया।

रात्रि का समय था। आकाश में तारे खेलते थे। एक अमीर ने एक विशाल भवन के द्वार पर दस्तक दी। दरीचे से किसी स्त्री ने सिर निकालकर पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ, दरवाजा खोल दो।"

"परन्तु वे यहाँ नहीं हैं।"

"परवाह नहीं, तुम दरवाजा खोल दो।"

स्त्री ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"मैं नहीं खोलूँगी, तुम इस समय जाओ।"

अमीर ने क्रोध से कहा—"दरवाजा खोल दो, नहीं तो मैं तोड़ डालूँगा।"

स्त्री ने उत्तर दिया—"जानते नहीं हो, नगर में शिशुपाल का राज्य है। अब कोई इस प्रकार बलात्कार नहीं कर सकता।"

अमीर ने तलवार निकाल कर दरवाजे पर आक्रमण किया। सहसा एक पहरेदार ने इसका हाथ थाम लिया, और कहा—"क्या कर रहे हो?"

अमीर ने उस की ओर इस तरह देखा, जिस तरह भेड़िया भेड़ को देखता है, और क्रोध से बोला—"तुम कौन हो?"

"मैं पहरेदार हूँ।"

"तुमको किसने नियत किया है?"

"न्याय-मन्त्री ने।"

"मूर्खता न करो। मैं उसे भी मिट्टी में मिला सकता हूँ।"

पहरेदार ने साहस से उत्तर दिया—"परन्तु इस समय महाराज अशोक भी आ जाएँ, तो भी नहीं टलूँगा।"

"क्यों मृत्यु को बुला रहे हो?"

"मैंने जो प्रण किया है, उसे पूरा करूँगा।"

"किससे प्रण किया है?"

"न्याय-मन्त्री से।"

"क्या?"

"यही कि जब तक तन में प्राण हैं और जब तक रुधिर का अन्तिम बिन्दु भी मेरे शरीर में शेष है, अपने कर्तव्य से कभी पीछे न हटूँगा।"

अमीर ने तलवार खींच ली। पहरेदार ने पीछे हट कर कहा—"आप गलती कर रहे हैं, मैं नौकरी पर हूँ।"

परन्तु अमीर ने सुना-अनसुना कर दिया, और तलवार लेकर पटा। पहरेदार ने भी तलवार खींच ली, परन्तु वह अभी नया था,

पहले ही वार में गिर गया, और मारा गया। अमीर का लहू सूख गया। उसके हाथों के तोते उड़ गये। उसको यह इच्छा न थी कि पहरेदार को मार दिया जाए वह उसे केवल डराना चाहता था; परन्तु घाव मर्मस्थान पर लगा। अमीर ने उसकी लाश को एक ओर कर दिया और आप भाग निकला।

× × ×

प्रातःकाल इस घटना की घर-घर चर्चा थी। लोग हैरान थे कि इतना साहस किसे हो गया कि पुलिस के कर्मचारी को मार डाले और फिर शिशुपाल के शासन में। राजधानी में आतंक छा गया। पुलिस के आदमी चारों ओर दौड़ते-फिरते थे, मानो यह उनके जीवन और मरण का प्रश्न हो। न्याय-मन्त्री ने भी मामले की खोज में दिन-रात एक कर दिया। यह घटना उनके शासन-काल में पहली थी। उनको खाना-पीना भूल गया, आँखों से नींद उड़ गई। घातक की खोज में उन्होंने कोई कसर उठा न रखी; परन्तु कुछ पता न लगा।

असफलता का प्रत्येक दिन अशोक की क्रोधाग्नि को अधिकाधिक प्रज्वलित कर रहा था। वे कहते, "तुमने कितने जोर से न्याय का दावा किया था, अब क्या हो गया ?" न्याय-मन्त्री लज्जा से सिर झुका लेते। महाराज कहते—"घातक कब तक पकड़ा जाएगा !" न्याय-मन्त्री उत्तर देते—"यत्न कर रहा हूँ, जल्दी ही पकड़ लूँगा।" महाराज कुछ दिन ठहरकर फिर पूछते—"हत्यारा पकड़ा गया ?" न्याय-मन्त्री कहते—"नहीं।" महाराज का क्रोध भड़क उठता। उनकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगतीं, बादल की नाईं गरजकर बोलते—"मैं यह 'नहीं' सुनते-सुनते तंग आ गया हूँ।"

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया; परन्तु हत्यारे का पता न लगा। अन्त में महाराज अशोक ने शिशुपाल को बुलाकर कहा—"तुम्हे तीन दिन की अवधि दी जाती है। यदि इस बीच में घातक न पकड़ा गया, तो तुम्हें फाँसी दे दी जाएगी।"

इस समाचार से नगर में हलचल-सी मच गई। एक ही मास के

अन्दर-अन्दर शिशुपाल लोकप्रिय हो चुके थे। उनके न्याय की चारों ओर धाक बँध गई थी। लोग महाराज को गालियाँ देने लगे। जहाँ चार मनुष्य इकट्ठे होते, इसी विषय पर बातचीत करने लगते। वे चाहते थे कि चाहे कुछ भी हो जाए, परन्तु शिशुपाल का बाल बाँका न हो। शिशुपाल स्वयं बड़ी उत्सुकता के साथ घातक की खोज में लीन थे, परन्तु व्यर्थ। यहाँ तक कि तीसरा दिन आ गया। अब कुछ ही घण्टे बाकी थे।

× × ×

रात्रि का समय था, परन्तु शिशुपाल की आँखों में नींद न थी। वे नगर के एक घने बाजार के अन्दर घूम रहे थे। सहसा एक मकान की खिड़की खुली और एक स्त्री ने झाँककर बाहर देखा। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। स्त्री ने धीरे से कहा—"तुम कौन हो? पहरेदार!"

निराशा के अन्धकार में आशा की एक किरण चमक गई। शिशुपाल ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं न्याय-मंत्री हूँ?"

"जरा यहीं ठहरो।"

स्त्री खिड़की से पीछे हट गई और दीपक लेकर दरवाजे पर आई। न्याय-मन्त्री को साथ लेकर वह अपने कमरे में गई और बोली—"आज अन्तिम रात्रि है?"

न्याय-मन्त्री ने चुभती हुई दृष्टि से स्त्री की ओर देखा और उत्तर दिया—"हाँ, अन्तिम।"

शब्द साधारण थे, परन्तु इनका अर्थ साधारण न था। स्त्री तिलमिलाकर खड़ी हो गई और बोली—"मैं इस घटना को अच्छी तरह जानती हूँ।"

शिशुपाल की मृतप्राय देह में प्राण आ गये, धैर्य रखकर बोले—"कहो।"

"रात्रि का समय था। घातक ने इस मकान का दरवाजा खटखटाया। वह यहाँ प्रायः आया करता है।"

"फिर आगे ।"

"मैंने उत्तर दिया, जिसके पास तुम आए हो, वह यहाँ नहीं है; परन्तु उसने इसे झूठ समझा, और दरवाजा तोड़ने को उद्यत हुआ। पहरेदार ने उसे रोका, और उसके हाथ से मारा गया।"

न्याय-मन्त्री ने पूछा—"परन्तु घातक कौन है ?"

स्त्री ने उनके कान में कुछ कहा और सहमी हुई कबूतरी की नाईं चारों ओर देखा।

× × ×

दूसरे दिन दरबार में तिल धरने को स्थान न था। आज न्याय-मंत्री का भाग्य-निर्णय होने को था। अशोक ने सिंहासन पर पैर रखते ही कहा—"न्याय-मन्त्री।"

शिशुपाल सामने आये, इस समय उनके मुख पर कोई चिन्ता, कोई अशान्ति न थी।

महाराज ने पूछा—"घातक का पता लगा ?"

न्याय-मन्त्री ने साहसपूर्वक उत्तर दिया—"हाँ, लग गया ?"

"पेश करो।"

न्याय-मन्त्री ने सिर झुकाकर सोचा। इस समय उनके हृदय में दो विरोधी शक्तियों का संग्राम हो रहा था। यह उनके मुख से स्पष्ट प्रतीत होता था। सहसा उन्होंने दृढ़ संकल्प से सिर उठाया और अपने एक उच्च अधिकारी को लक्ष्य करते हुए कहा—"धनवीर !"

"श्रीमान् !"

"गिरफ्तार कर लो, मैं आज्ञा देता हूँ।"

इशारा महाराज की ओर था। दरबार में निस्तब्धता छा गई। अशोक का चेहरा लाल हो गया, मानो वह तपा हुआ ताँबा हो। नेत्रों से अग्नि-कण निकलने लगे। वे तिलमिलाकर खड़े हो गए और बोले—"अरे ब्राह्मण ! तुझे यहाँ तक साहस हो गया ?"

न्याय-मन्त्री ने ऐसा प्रकट किया, मानो कुछ सुना ही नहीं, और अपने शब्दों को फिर दोहराया—"मैं आज्ञा देता हूँ, गिरफ्तार कर लो।"

धनवीर पुतली की नाईं आगे बढ़ा। दरबारियों की साँस रुक गई। महाराज सिंहासन से नीचे उतर आये। न्याय-मन्त्री ने कहा—"यह घातक है, मेरी अदालत में पेश करो।"

धनवीर ने अशोक को हथकड़ी लगा दी और शिशुपाल की कचहरी की ओर ले चला। वहाँ सारा नगर उपस्थित था। शिशुपाल ने आज्ञा दी—"अपराधी राजकुल से है, अतएव अकेला पेश किया जाए।"

महाराज अशोक ने संकेत किया, मन्त्री-गण पीछे हट गए। महाराज उस जंगले में खड़े हो गए, जो अपराधी के लिए नियत किया गया था। छत्रपति नरेश के साथ अपने राज्य में स्वयं उसके नौकर के हाथ यह सम्मान हो सकता है—इसकी किसी को आशंका न थी। परन्तु शिशुपाल दृढ़ संकल्प के साथ न्यायासन पर विराजमान थे। उन्होंने आँख से महाराज को प्रणाम किया। हाथों को न्याय-रज्जु ने बाँध रखा था। वे धीरे से बोले—"तुम पर पहरेदार की हत्या का अपराध है। तुम इसका क्या उत्तर देते हो?"

महाराज अशोक ने होंठ काटकर उत्तर दिया—"वह उद्दण्ड था।"

"तो तुम अपराध स्वीकार करते हो?"

"हाँ, मैंने उसको मारा है, परन्तु जान-बूझकर नहीं मारा।"

"वह उद्दण्ड नहीं था, मैं उसे चिरकाल से जानता हूँ।"

"वह उद्दण्ड था।"

"तुम झूठ बोलते हो। मैं तुम्हारे वध की आज्ञा देता हूँ।"

अशोक के नेत्र लाल हो गये। मन्त्रियों ने तलवारें निकाल लीं। कई आदमी शिशुपाल को गालियाँ देने लगे। कई एक ने यहाँ तक कह दिया, 'न्याय-मंत्री पागल हो गया है।' एक आवाज आई, 'तुम अपना सिर बचाओ।'

अशोक ने हाथ उठाकर मौन रहने का संकेत किया। चारों ओर फिर निस्तब्धता छा गई। न्यायमंत्री ने कड़ककर कहा—"आपका क्रोध करना सर्वथा अनुचित है। मैं इस समय न्याय-मंत्री के आसन पर हूँ, और न्याय करने बैठा हूँ। महाराज अशोक की दी हुई मुद्रा मेरे हाथ में

है। यदि किसी ने शोर-शार किया तो मैं उसको अदालत के अपमान के अपराध में गिरफ्तार कर लूँगा।''

''अशोक ! तुमने एक राजकर्मचारी का वध किया है। मैं तुम्हारे वध की आज्ञा देता हूँ।''

महाराज ने सिर झुका दिया। इस समय उनके हृदय में ब्रह्मानन्द का समुद्र लहरें मार रहा था। सोचते थे, यह मनुष्य स्वर्ण है, जो अग्नि में पड़कर कुन्दन हो गया है। कहता था, 'मेरा न्याय अपनी धूम मचा देगा,' वह वचन झूठ न था। इसने अपने कहने की लाज रख ली है। ऐसे ही मनुष्य होते हैं जिन पर जातियाँ अभिमान करती हैं और जिन पर अपना तन-मन निछावर करने को उद्यत हो जाती हैं। उन्होंने एक विचित्र भाव से सिर ऊँचा किया और उपेक्षापूर्वक कहा—'' मैं इस आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं बोल सकता।''

न्याय-मन्त्री ने एक मनुष्य को हुक्म दिया। वह एक स्वर्ण-मूर्ति लेकर उपस्थित हुआ। न्याय-मन्त्री ने खड़े होकर कहा—''महाशयो ! यह सच है कि मैं न्याय-मन्त्री हूँ। यह भी सच है कि मेरा काम न्याय करना है। यह भी सच है कि एक राजकर्मचारी की हत्या की गई है। उसका दण्ड अवश्यम्भावी है, परन्तु शास्त्रों में राजा को ईश्वर का रूप माना गया है। उसे ईश्वर ही दण्ड दे सकता है। यह काम न्याय-मन्त्री की शक्ति से बाहर है। अतएव मैं आज्ञा देता हूँ कि महाराज चेतावनी देकर छोड़ दिए जाएँ और उनकी यह मूर्ति फाँसी पर लटकाई जाए, जिससे लोगों को शिक्षा मिले।''

न्याय-मन्त्री का जयकार हुआ, लोग इस न्याय पर मुग्ध हो गए। वे कहते थे—'यह मनुष्य नहीं देवता है, जो न किसी व्यक्ति से डरता है और न किसी की शक्ति के आगे सिर झुकाता है। अन्तःकरण की आवाज सुनता है और उस पर निर्भयता से बढ़ा चला जाता है। और कोई होता तो महाराज के सामने हाथ बाँधकर खड़ा हो जाता; परन्तु इसने उन्हें ''तुम'' कह कर सम्बोधन किया है, मानो कोई साधारण अपराधी हो।' उनके शरीर में रोमांच हो गया; सहस्रों नेत्रों ने आनन्द

के आँसू बहाए और सहस्रों जिह्वाओं ने जोर-जोर से कहा—"न्याय-मन्त्री की जय !"

× × ×

रात हो गई थी, न्याय मंत्री राजमहल में पहुँचे और अशोक के सम्मुख अँगूठी और मुद्रा रख बोले—"महाराज, यह अपनी वस्तुएँ सँभालें। मैं अपने गाँव वापस जाऊँगा।"

अशोक ने सम्मान-भरी दृष्टि से उनकी तरफ देखकर कहा—"आज आपने मेरी आँखें खोल दी हैं। अब यह कैसे हो सकता है ?"

"परन्तु श्रीमान्...।"

अशोक ने बात काटकर कहा—"आपका साहस कभी न भूलूँगा। यह बोझ आप ही उठा सकते हैं। मुझे कोई दूसरा इस पद के योग्य दिखाई नहीं देता।"

न्याय-मन्त्री निरुत्तर हो गए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. न्याय-मंत्री के कार्य को सँभालने के लिए किन-किन गुणों का होना आवश्यक है ?

२. अशोक को शिशुपाल के न्याय-निर्णय से प्रसन्नता क्यों हुई ?

३. इस कहानी में मानव-मन की किन भावनाओं का विवेचन किया गया है ?

४. इस कहानी के आधार पर अशोक और शिशुपाल का चरित्र-चित्रण कीजिए।

५. सुदर्शनजी की कहानी-कला की विशेषता बताइए।

: ५ :

कर्त्तव्य और सत्यता

[श्यामसुन्दरदास]

नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना करके तथा पचास वर्ष से भी अधिक हिन्दी की सेवा में लगे रहकर बाबू श्यामसुन्दरदास ने हिन्दी की अमूल्य सेवा की है। आपका जन्म १८७५ में काशी में और वहीं १९४५ में निधन हुआ। आपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य,' 'साहित्या-लोचन', 'भाषा विज्ञान', 'गोस्वामी तुलसीदास'-जैसी मौलिक रचनाओं तथा बीसियों सम्पादित तथा संकलित ग्रन्थों से हिन्दी का भण्डार भरा। आपकी शैली सरल और सुलझी हुई होती है। जहाँ वे एक तरफ उर्दू-फारसी के शब्दों से बचते हैं वहाँ दूसरी ओर वे संस्कृत-गर्भित शब्दों का भी कम प्रयोग करते हैं।

'कर्त्तव्य और सत्यता' निबन्ध में लेखक ने बताया है कि कर्त्तव्य पालन हमारा धर्म है। हमें उन्हीं कार्यों को करना चाहिए जिनकी स्वीकृति हमारी आत्मा दे। कर्त्तव्य और सत्यता का घनिष्ठ सम्बन्ध है—सत्यता के साथ कर्तव्य का पालन ही सफलता है। किसी भी दशा में सत्य की उपेक्षा उचित नहीं।

कर्त्तव्य वह वस्तु है जिसे करना हम लोगों का परम धर्म है और जिसके न करने से हम लोग और लोगों की दृष्टि से गिर जाते हैं और अपने चरित्र से नीच बन जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में कर्त्तव्य का करना बिना दबाव के नहीं हो सकता, क्योंकि पहले-पहल मन आप ही उसे करना नहीं चाहता। इसका आरम्भ प्रथम घर से होता है, क्योंकि वहाँ लड़कों का कर्त्तव्य माता-पिता की ओर, और माता-पिता का कर्त्तव्य लड़कों की ओर दीख पड़ता है। इसके अतिरिक्त पति-पत्नी, स्वामी-

सेवक और स्त्री पुरुष के भी परस्पर अनेक कर्तव्य हैं। घर के बाहर हम मित्रों, पड़ौसियों, राजा-प्रजाओं के परस्पर कर्त्तव्यों को देखते हैं। इसलिए संसार में मनुष्य का जीवन कर्त्तव्यों से भरा पड़ा है, जिधर देखो उधर कर्त्तव्य-ही-कर्त्तव्य दीख पड़ते हैं। बस, इसी कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन करना हम लोगों का धर्म है और इसी से हम लोगों के चरित्र की शोभा बढ़ती है। कर्त्तव्य का करना न्याय पर निर्भर है और वह न्याय ऐसा है जिसे समझने पर हम लोग उसे प्रेम के साथ कर सकते हैं।

हम सब लोगों के मन में एक ऐसी शक्ति है जो हम सभी को बुरे कामों के करने से रोकती और अच्छे कामों की ओर हमारी प्रवृत्ति को झुकाती है। यह बहुधा देखा गया है कि जब कोई मनुष्य खोटा काम करता है तो वह बिना किसी के कहे आप ही लजाता और अपने मन में दुःखी होता है।

तुमने बहुधा देखा होगा कि जब कभा कोई लड़का मिठाई चुराकर खा लेता है तो वह अपने मन में डरा करता है और पीछे से आप ही पछताता है कि मैंने ऐसा क्यों किया, मुझे अपनी माता से कहकर खाना चाहिए था। इसी प्रकार का एक दूसरा लड़का, जो कभी कुछ चुराकर नहीं खाता, सदा प्रसन्न रहता है और उसके मन में कभी किसी प्रकार का डर और पछतावा नहीं होता। इसका क्या कारण है? यही कि हम लोगों का कर्त्तव्य है कि हम कभी चोरी न करें। परन्तु जब हम चोरी कर बैठते हैं तो हमारी आत्मा हमें कोसने लगती है। इसलिए हमारा यह धर्म है कि हमारी आत्मा जो हमें कहे, उसके अनुसार हम करें। दृढ़ विश्वास रखो कि जब तुम्हारा मन किसी काम के करने से हिचकिचाये और दूर भागे तो कभी तुम उस काम को न करो। तुम्हें अपना धर्म पालन करने में बहुधा कष्ट उठाना पड़ेगा, पर इससे तुम अपना साहस न छोड़ो। क्या हुआ जो तुम्हारे पड़ौसी ठगविद्या और असत्यपरता से धनाढ्य हो गए और तुम कंगाल ही रह गए; क्या हुआ जो दूसरे लोगों ने झूँठी चाटुकारी करके बड़ी नौकरियाँ पा लीं और तुम्हें कुछ न मिला; और क्या हुआ जो दूसरे नीच कर्म करके सुख भोगते हैं और तुम

सदा कष्ट में रहते हो ? तुम अपने कर्त्तव्य को कभी न छोड़ो, और देखो इससे बढ़कर सन्तोष और आदर क्या हो सकता है कि तुम अपने धर्म का पालन कर सकते हो।

हम लोगों का जीवन सदा अनेक कार्यों में व्यस्त रहता है। हम लोगों का समय सदा काम करते ही बीतता है। इसलिए हम लोगों को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि हम लोग सदा अपने धर्म के अनुसार काम करें और कभी उसके पथ पर से न हटें, चाहे उसके करने में हमारे प्राण भी चले जाएँ तो कोई चिन्ता नहीं।

धर्म-पालन करने के मार्ग में सबसे अधिक बाधा चित्त की चंचलता, उद्देश्य की अस्थिरता और मन की निर्बलता है। मनुष्य के कर्त्तव्य-मार्ग में एक ओर तो आत्मा के भले और बुरे कर्मों का ज्ञान और दूसरी ओर आलस्य और स्वार्थपरता रहती है। बस मनुष्य इन्हीं दोनों के बीच में पड़ा रहता है और अन्त में यदि उसका मन पक्का हुआ तो वह आत्मा की आज्ञा मानकर अपने धर्म का पालन करता है और यदि उसका मन कुछ काल तक द्विविधा में पड़ा रहा तो स्वार्थ निश्चय ही उसे आ घेरेगा और उसका चरित्र घृणा के योग्य हो जायगा। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि आत्मा जिस बात के करने की प्रेरणा दे उसे बिना अपना स्वार्थ सोचे झटपट कर डालना चाहिए। ऐसा करते करते जब धर्म करने की बान पड़ जाएगी तो फिर किसी बात का भी भय न रहेगा। देखो, इस संसार में जितने बड़े-बड़े लोग हो गये हैं, जिन्होंने संसार का उपकार किया है और उसके लिये आदर और सत्कार पाया है, उन सबने अपने कर्त्तव्य को श्रेष्ठ माना है, क्योंकि जितने कर्म उन्होंने किये उन सब में अपने कर्त्तव्य पर ध्यान देकर न्याय का बर्ताव किया। जिन जातियों में यह गुण पाया जाता है वे ही संसार में उन्नति करती हैं और संसार में उनका नाम आदर के साथ लिया जाता है।

कर्त्तव्य-पालन में और सत्यता में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो मनुष्य अपना कर्त्तव्य-पालन करता है, वह अपने कर्मों और वचनों में सत्यता का बर्ताव भी रखता है। वह ठीक समय पर उचित रीति से

अच्छे कामों को करता है। सत्यता ही एक ऐसी वस्तु है जिससे इस संसार में मनुष्य अपने कार्यों में सफलता पा सकता है, क्योंकि संसार में कोई काम झूठ बोलने से नहीं चल सकता। यदि किसी घर के सभी लोग झूठ बोलने लगें तो उस घर में कोई काम न हो सकेगा और सब लोग बड़ा दुख भोगेंगे। इसलिए हम लोगों को अपने कार्य में झूठ का कभी वर्ताव नहीं करना चाहिए और सत्यता को सबसे ऊँचा स्थान देना उचित है। संसार में जितने पाप हैं, झूठ उन सब से बुरा है। झूठ की उत्पत्ति पाप, कुटिलता और कायरता के कारण होती है। बहुत-से लोग सचाई का इतना थोड़ा ध्यान रखते हैं कि अपने सेवकों को स्वयं झूठ बोलना सिखाते हैं, पर उनको इस बात पर आश्चर्य करना और कुछ क्रुद्ध होना न चाहिए जब कि उनके नौकर उनसे अपने लिए झूठ बोलें।

बहुत-से लोग नीति और आवश्यकता के बहाने झूठ की रक्षा करते हैं। वे कहते हैं कि इस समय इस बात को प्रकाशित न करना और दूसरी बात को बनाकर कहना नीति के अनुसार समयानुकूल और परम आवश्यक है। फिर बहुत से लोग किसी बात को सत्य-सत्य कहते हैं पर उसे इस प्रकार से घुमा-फिराकर कहते हैं कि जिससे सुननेवाला यही समझे कि यह बात सत्य नहीं है, वरन् इसका उल्टा सत्य होगा। इस प्रकार से बातें करना झूठ बोलने के पाप से किसी प्रकार कम नहीं।

संसार में बहुत-से ऐसे भी नीच और कुत्सित लोग होते हैं जो झूठ बोलने में अपनी चतुराई समझते हैं और सत्य को छिपाकर धोखा देना या झूठ बोलकर अपने को बचा लेने में ही अपना परम गौरव मानते हैं। ऐसे लोग ही समाज को नष्ट करके दुःख और सन्ताप के फैलाने के मुख्य कारण होते हैं। इस प्रकार का झूँठ बोलना स्पष्ट झूठ बोलने से अधिक निन्दित और कुत्सित कर्म है।

झूठ बोलना और भी कई रूपों में दीख पड़ता है; जैसे चुप रहना किसी बात को बढ़ाकर कहना, किसी बात को छिपाना, भेष बदलना, झूठ-मूठ दूसरों के साथ हाँ-में-हाँ मिलाना; प्रतिज्ञा करके उसे पूरा न

करना और सत्य को न बोलना इत्यादि। जब कि ऐसा करना धर्म के विरुद्ध है तब यह बातें झूठ बोलने से किसी प्रकार कम नहीं हैं। फिर ऐसे लोग भी होते हैं जो मुँह देखी बातें बनाया करते हैं, परन्तु करते वही काम हैं जो उन्हें रुचता है। ऐसे लोग मन में समझते हैं कि कैसे सब को मूर्ख बनाकर हमने अपना काम निकाल लिया, पर वास्तव में वे अपने को ही मूर्ख बनाते हैं और अन्त में उनकी पोल खुल जाने पर समाज में सब लोग घृणा करते हैं और उनसे बात करना अपमान समझते हैं।

इसलिए सब लोगों का परम धर्म है कि सत्य बोलने को सबसे श्रेष्ठ मानें और कभी झूठ न बोलें चाहे उससे कितनी ही अधिक हानि क्यों न होती हो। सत्य बोलने से ही समाज में हमारा सम्मान हो सकेगा और हम आनन्दपूर्वक अपना समय बिता सकेंगे, क्योंकि सच्चे को सब कोई चाहते और झूठे से सभी घृणा करते हैं। यदि हम सदा सत्य बोलना अपना धर्म मानेंगे तो हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करने में कुछ भी कष्ट न होगा और बिना किसी परिश्रम और कष्ट के हम अपने मन में सदा सन्तुष्ट और सुखी बने रहेंगे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'कर्त्तव्य' किसे कहते हैं और उसके पालन से क्या लाभ होते हैं?

२. बुरा काम करते समय हमें कौन टोकता है? क्या यह संकेत हमें अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर प्रवृत्त कर सकता है?

३. सत्य और कर्त्तव्य के पारस्परिक सम्बन्धों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

४. बाबू श्यामसुन्दरदास की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

५. हिन्दी-निबन्ध के विकास की जानकारी देते हुए प्रमुख निबन्ध-लेखकों के नाम बताइए।

: ६ :

बिन्दा

[महादेवी वर्मा]

आधुनिक हिन्दी साहित्यिकों में महादेवी जी की गणना प्रमुख रूप से होती है। छायावादी कविता के आप मुख्य आधारों में से हैं। आपके गद्य में भी काव्य की छटा दिखाई देती है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' आपके काव्यात्मक संस्मरण हैं। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में आपने नारी जीवन की समस्याओं पर गहराई से विचार किया है। आपके काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाएँ हिन्दी आलोचना की अमूल्य निधि हैं। आपका जन्म १९०७ में हुआ।

प्रस्तुत संस्मरण में लेखिका ने अपनी शैशवकाल की सखी बिन्दा का एक तरुण चित्र खींचा है। इस रेखाचित्र में एक मातृहीना बालिका के जीवन में ओत-प्रोत पीड़ा और करुणा को साकार किया गया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि अलंकारों के प्रयोग द्वारा आप अपने विषय का एक चित्र सा उपस्थित कर देती हैं। अर्थपूर्ण विशेषणों द्वारा आपकी शैली और भी प्रभावपूर्ण हो जाती है।

सभीत-सी आँखों वाली उस दुर्बल, छोटी और अपने-आप ही में सिमटी-सी बालिका पर दृष्टि डालकर मैंने बैठे सज्जन को, उनका भरा हुआ प्रवेश-पत्र लौटाते हुए कहा—"आपने आयु ठीक नहीं भरी है। ठीक कर दीजिए, नहीं तो पीछे कठिनाई पड़ेगी।"

"नहीं, यह तो गत असाढ़ में चौदह की हो चुकी," सुनकर मैंने कुछ विस्मित भाव से अपनी इस भावी विद्यार्थिनी को अच्छी तरह देखा, जो नौ वर्षीय बालिका की सरल चंचलता से शून्य थी और चौदह वर्षीय किशोरी के सलज्ज उत्साह से अपरिचित।

उसकी माता के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा स्वगत न रहकर स्पष्ट प्रश्न ही बन गई होगी, क्योंकि दूसरी ओर से कुछ कुंठित उत्तर मिला—"मेरी दूसरी पत्नी है और आप तो जानती ही होंगी"···और उनके वाक्य को अधसुना ही छोड़कर मेरा मन स्मृतियों की चित्रशाला में दो युगों से अधिक समय की धूल के नीचे दबे बिन्दा या बिन्ध्येश्वरी के धुँधले चित्र पर उँगली रखकर कहने लगा, "ज्ञात है, अवश्य ज्ञात है।"

बिन्दा मेरी उस समय की बाल्यसखी थी, जब मैंने जीवन और मृत्यु का अमिट अन्तर जान नहीं पाया था। अपने नाना और दादी के स्वर्ग-गमन की चर्चा सुनकर मैं बहुत गम्भीर मुख और अस्वस्थ भाव से घर-भर को सूचना दे चुकी थी कि जब मेरा सिर कपड़े रखने की अलमारी को छूने लगेगा तब मैं निश्चय ही एक बार उनको देखने जाऊँगी। न मेरे इस पुण्य संकल्प का विरोध करने की किसी को इच्छा हुई और न मैंने एक बार मरकर कभी न लौट सकने का नियम जाना। ऐसी दशा में, छोटे-छोटे असमर्थ बच्चों को छोड़कर मर जाने वाली माँ की कल्पना मेरी बुद्धि में कहाँ ठहरती? मेरा संसार का अनुभव भी बहुत संक्षिप्त-सा था। अज्ञानावस्था से मेरा साथ देने वाली सफेद कुतिया सीढ़ियों के नीचे वाली अँधेरी कोठरी में आँख मूँदे पड़े रहनेवाले बच्चों की इतनी सतर्क पहरेदार हो उठती थी कि उसका गुर्राना मेरी सारी ममता-भरी मैत्री पर पानी फेर देता था। भूरी पूसी भी अपने चूहे-जैसे निःसहाय बच्चों को तीखे पैने दाँतों में ऐसी कोमलता से दबाकर कभी लाती, कभी लेजाती थी कि उनके कहीं दाँत भी नहीं चुभ पाता था। ऊपर की छत के कोने पर कबूतरों का और बड़ी तस्वीर के पीछे गौरैया का जो घोंसला था, उसमें खुली हुई छोटी-छोटी चोंचों और उनमें सावधानी से भरे जाते दानों और कीड़े-मकोड़ों को भी मैं अनेक बार देख चुकी थी। बछिया को हटाते ही रँभा-रँभाकर घर-भर को यह दुःखद समाचार सुनानेवाली अपनी श्यामा गाय की व्याकुलता भी मुझसे छिपी न थी। एक बच्चे को कन्धे से चिपकाए और एक की उँगली पकड़े हुए जो भिखारिन द्वार-द्वार फिरती थी वह भी तो बच्चों के

लिए ही कुछ माँगती रहती थी। अतः निश्चित रूप से समझ लिया था कि संसार भर का सारा कारोबार बच्चों को खिलाने, पिलाने, सुलाने आदि के लिए ही हो रहा है और इस महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य में भूल न होने देने का काम माँ नामधारी जीवों को सौंपा गया है।

और बिन्दा के भी तो माँ थी, जिन्हें हम पण्डिताइन चाची और बिन्दा नई अम्मा कहती थी। वे अपनी गोरी मोटी देह को रंगीन साड़ी से सजे कसे, चारपाई पर बैठकर, फूले गाल और चिपटी सी नाक के दोनों ओर नीले काँच के बटन-सी चमकती हुई आँखों से युक्त मोहन को तेल मलती रहती थीं। उनकी विशेष कारीगरी से संवारी पटियों के बीच में लाल स्याही की मोटी लकीर-सा सिन्दूर, उनींदी-सी आँखों में काले डोरे के समान लगने वाला काजल, चमकीले वर्णफूल, गले की माला, नगदार रंगबिरंगी चूड़ियाँ और घुँघुरूदार बिछुए मुझे बहुत भाते थे, क्योंकि ये सब अलंकार उन्हें मेरी गुड़िया की समानता दे देते थे।

यह सब तो ठीक था, पर उनका व्यवहार विचित्र-सा जान पड़ता था। सर्दी के दिनों में जब हमें धूप निकलने पर जगाया जाता था, गर्म पानी से हाथ-मुँह धुलाकर मोजे, जूते और ऊनी कपड़ों से सजाया जाता था और मना-मनाकर गुनगुना दूध पिलाया जाता था, तब पड़ोस के घर में पंडिताइन चाची का स्वर उच्च-से-उच्चतर होता रहता था। यदि उस गर्जन-तर्जन का कोई अर्थ समझ में न आता तो मैं उसे श्यामा के रँभाने के समान स्नेह का प्रदर्शन भी समझ सकती थी, परन्तु उनकी शब्दावली परिचित होने के कारण ही कुछ उलझन उत्पन्न करनेवाली थी। 'उठती है या आऊँ ?', 'बैल के से दीदे क्या निकाल रही है ?', 'मोहन का दूध कब गर्म होगा ?', 'अभागी मरती भी नहीं !' आदि वाक्यों में जो कठोरता की धारा बहती रहती थी, उसे मेरा अबोध मन भी जान ही लेता था।

कभी-कभी मैं ऊपर की छत पर जाकर उस घर की कथा समझने का प्रयास करती तब मुझे मैली धोती लपेटे हुए बिन्दा ही आँगन से चौके तक फिरकनी-सी नाचती दिखाई देती। उसका कभी झाड़ू देना,

कभी आग जलाना, कभी आँगन के नल से कलसी में पानी लाना, कभी नई अम्मा को दूध का कटोरा देने जाना, मुझे बाजीगर के तमाशे-जैसा लगता था, क्योंकि मेरे लिए तो वे सब कार्य असम्भव-से थे। पर जब उस विस्मित कर देने वाले कौतुक की उपेक्षाकर पंडिताइन चाची का कठोर स्वर गूँजने लगता, जिसमें कभी-कभी पंडितजी की घुड़की का पुट भी मिला रहता था, तब न जाने किस दुःख की छाया मुझे घेरने लगती थी। जिसकी सुशीलता का उदाहरण देकर मेरे नटखटपन को रोका जाता था, वही बिन्दा घर में चुपके-चुपके कौन-सा नटखटपन करती रहती है इसे बहुत प्रयत्न करके भी मैं न समझ पाती थी। मैं एक भी काम नहीं करती थी और रात-दिन ऊधम मचाती थी पर मुझे माँ ने कभी न मर जाने की आज्ञा दी और न आँखें निकाल लेने का भय दिखाया। एक बार मैंने पूछा भी—"क्या पंडिताइन चाची तुम्हारी तरह नहीं हैं?" माँ ने मेरी बात का अर्थ कितना समझा यह तो पता नहीं, उनके संक्षिप्त 'है' से न बिन्दा की समस्या का समाधान हो सका और न मेरी उलझन सुलझ पाई।

बिन्दा मुझसे कुछ बड़ी ही रही होगी; परन्तु उसका नाटापन देख कर ऐसा लगता था मानो किसी ने ऊपर से दबाकर उसे कुछ छोटा कर दिया हो। दो पैसे में आने वाली खंजड़ी के ऊपर मढ़ी हुई झिल्ली के समान पतले चर्म से मढ़े और भीतर की हरी नसों की झलक देने वाले उसके दुबले हाथ-पैर न जाने किस अज्ञात भय से अवसन्न रहते थे। कहीं से कुछ आहट होते ही उसका विचित्र रूप से चौंक पड़ना और पंडिताइन चाची का स्वर कान में पड़ते ही उसके सारे शरीर का थर-थरा उठना, मेरे विस्मय को बढ़ा ही नहीं देता था, प्रत्युत उसे भय में बदल देता था और बिन्दा की आँखें तो मुझे पिंजड़े में चिड़िया की याद दिलाती थीं।

एक बार जब दो तीन करके तारे गिनते-गिनते उसने एक चमकीले तारे की ओर उँगली उठाकर कहा—'वह रही मेरी अम्मा' तब तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। क्या सबकी एक अम्मा तारों में होती

है और एक घर में ? पूछने पर बिन्दा ने अपने ज्ञान-कोष में से कुछ रत्न मुझे दिये और तब मैंने समझा कि जिस अम्मा को ईश्वर बुला लेता है, वह तारा बनकर ऊपर से बच्चों को देखती रहती है और जो बहुत सज-धज से घर में आती है, वह बिन्दा की नई अम्मा जैसी होती है। मेरी बुद्धि सहज ही पराजय स्वीकार करना नहीं जानती; इसी से मैंने सोचकर कहा, "तुम नई अम्मा को पुरानी अम्मा क्यों कहतीं, फिर वे न नई रहेंगी न डाटेंगी।"

बिन्दा को मेरा उपाय कुछ जँचा नहीं, क्योंकि वह तो अपनी पुरानी अम्मा को खुली पालकी में लेटकर जाते और नई को बन्द पालकी में बैठकर आते देख चुकी थी; अतः किसी को भी पदच्युत करना उसके लिए कठिन था।

पर उसकी कथा से मेरा मन तो सचमुच व्याकुल हो उठा. अतः उसी रात में मैंने माँ से बहुत अनुनयपूर्वक कहा, "तुम कभी तारा न बनना, चाहे भगवान् कितना ही चमकीला तारा बनाएँ।" माँ बेचारी मेरी विचित्र मुद्रा पर विस्मित होकर कुछ बोल भी न पाई थीं कि मैंने अकुण्ठित भाव से अपना आशय प्रकट कर दिया, "नहीं तो पंडिताइन चाची-जैसी नई अम्मा पालकी में बैठकर आ जाएगी और फिर मेरा दूध, बिस्कुट, जलेबी सब बन्द हो जाएगा—और मुझे बिन्दा बनना पड़ेगा।" माँ का उत्तर तो मुझे स्मरण नहीं, पर इतना याद है कि उस रात उनकी धोती का छोर मुट्ठी में दबाकर ही मैं सो पाई थी।

बिन्दा के अपराध तो मेरे लिए अज्ञात थे, पर पण्डिताइन चाची के न्यायालय से मिलने वाले दण्ड के सब रूपों से मैं परिचित हो चुकी थी। गर्मी के दोपहर में मैंने बिन्दा को आँगन की जलती धरती पर बार-बार पैर उठाते और रखते हुए घण्टों खड़े देखा था, चौके के खम्भे से दिन-दिन-भर बँधा पाया था और भूख से मुरझाये मुख के साथ पहरों नई अम्मा और खटोले में सोते मोहन पर पंखा झलते देखा था। उसे अपराध का ही नहीं, अपराध के अभाव का भी दण्ड सहना पड़ता था, इसी से पंडितजी की थाली में पंडिताइन चाची का ही काला, मोटा और

घुँघराला बाल निकालने पर दण्ड बिन्दा को मिलता। उसके छोटे-छोटे हाथों से धुल न सकनेवाले, उलझे, तेलहीन बाल भी अपने स्वाभाविक भूरेपन और कोमलता के कारण मुझे बड़ अच्छे लगते थे। जब पंडिताइन चाची की कैंची ने उन्हें कूड़े के ढेर पर बिखराकर उनके स्थान को बिल्ली की काली धारियों-जैसी रेखाओं से भर दिया तो मुझे रुलाई आने लगी; पर बिन्दा ऐसे बैठी रही मानो सिर और बाल दोनों नई अम्मा के ही हों।

और एक दिन याद आता है। चूल्हे पर चढ़ाया दूध उफना जा रहा था। बिन्दा के नन्हे-नन्हे हाथों ने दूध की पतीली उतारी अवश्य पर वह उसकी उँगलियों से छूटकर पैरों पर गिर पड़ी। खौलते दूध से जले पैरों के साथ दरवाजे पर खड़ी बिन्दा का रोना देख मैं तो हतबुद्धि-सी हो रही। पंडिताइन चाची से कहकर दवा क्यों नहीं लगवा लेती, यह समझना मेरे लिए कठिन था। उसपर जब बिन्दा मेरा हाथ अपने जोर से धड़कते हुए हृदय से लगाकर कहीं छिपा देने की आवश्यकता बताने लगी तब तो मेरे लिए सब-कुछ रहस्यमय हो उठा।

उसे मैं अपने घर खींच लायी अवश्य, पर न ऊपर के खंड में माँ के पास ले जा सकी और न छिपने का स्थान खोज सकी। इतने में दीवारें लाँघकर आनेवाले पंडिताइन चाची के उग्र स्वर ने, भय से हमारी दिशाएँ रूँध दीं, इसी से हड़बड़ाहट में हम दोनों उस कोठरी में जा घुसीं जिसमें गाय के लिए घास भरी जाती थी। मुझे तो घास की पत्तियाँ भी चुभ रही थीं, कोठरी का अन्धकार भी कष्ट दे रहा था, पर बिन्दा अपने जले पैरों को घास में छिपाये और दोनों ठण्डे हाथों से मेरा हाथ दबाये ऐसे बैठी थी मानो घास का चुभता हुआ ढेर रेशमी बिछौना बन गया हो।

मैं तो शायद सो गई थी क्योंकि जब घास निकालने के लिए आया हुआ गोपी इस अभूतपूर्व दृश्य की घोषणा करने के लिए कोलाहल मचाने लगा, तब मैंने आँखें मलते हुए पूछा—"क्या सवेरा हो गया?"

माँ ने बिन्दा के पैरों पर तिल का तेल और चूने का पानी लगाकर जब अपने विशेष सन्देशवाहक के साथ उसे घर भिजवा दिया तब उसकी

क्या दशा हुई, यह बताना कठिन है; पर इतना तो मैं जानती ही हूँ कि पंडिताइन चाची के न्याय-विधान में क्षमा का स्थान न था, न अपील का अधिकार।

फिर कुछ दिनों तक मैंने बिन्दा को घर-आँगन में काम करते नहीं देखा। उसके घर जाने से माँ ने मुझे रोक दिया था, पर वे प्रायः कुछ अंगूर-सेव लेकर वहाँ हो आती थीं। बहुत खुशामद करने पर रुकिया ने बताया कि उस घर में महारानी आई हैं। 'क्या वे मुझ से नहीं मिल सकतीं' पूछने पर वह मुँह में कपड़ा ठूँसकर हँसी रोकने लगी। जब मेरे मन का कोई समाधान न हो सका, तब मैं एक दिन दोपहर को सबकी आँख बचाकर बिन्दा के घर पहुँची। नीचे के सुनसान खड में बिन्दा अकेली एक खाट पर पड़ी थी। आँखें गड्ढे में घुस गई थीं, मुख दानों से भरकर न जाने कैसा हो गया था और मैली-सी चादर के नीचे छिपा शरीर बिछौने से भिन्न ही नहीं जान पड़ता था। डाक्टर, दवा की शीशियाँ, सिर पर हाथ फेरती हुई माँ और बिछौने के चारों ओर चक्कर काटते हुए बाबूजी के बिना भी बीमारी का अस्तित्व है, यह मैं नहीं जानती थी, इसी से उस अकेली बिन्दा के पास खड़ी होकर मैं चकित-सी चारों ओर देखती रह गई। बिन्दा ने ही कुछ संकेत और कुछ अस्पष्ट शब्दों में बताया कि नई अम्मा मोहन के साथ ऊपर के खड में रहती हैं, शायद चेचक के डर से। सवेरे-शाम आकर उसका काम कर जाती हैं।

फिर तो बिन्दा को देखना सम्भव न हो सका, क्योंकि मेरे इस आज्ञा-उल्लंघन से माँ बहुत चिन्तित हो उठी थीं।

एक दिन सवेरे ही रुकिया ने जाने क्या कहा कि वे रामायण बन्द कर बार-बार आँखें पोंछती हुई बिन्दा के घर चल दीं। जाते-जाते वे मुझे बाहर न निकलने का आदेश देना न भूली थीं, इसी से इधर-उधर झाँककर देखना आवश्यक हो गया। रुकिया मेरे लिए त्रिकालदर्शी से कम न थी, परन्तु वह विशेष अनुनय-विनय के बिना कुछ बताती ही नहीं थी और उससे अनुनय-विनय करना मेरे आत्मसम्मान के विरुद्ध

पड़ता था। अतः खिड़की से झाँककर मैं बिन्दा के दरवाजे पर जमा हुए आदमियों के अतिरिक्त और कुछ न देख सकी। इस प्रकार की भीड़ से विवाह और बारात का जो सम्बन्ध है उसे मैं जानती थी। तब क्या उस घर में विवाह हो रहा है? है, तो किसका? आदि प्रश्न मेरी बुद्धि की परीक्षा लेने लगे। पंडितजी का विवाह तो तब होगा जब दूसरी पंडिताइन चाची भी मरकर तारा बन जाएँगी और बैठ न सकने-वाले मोहन का विवाह सम्भव नहीं, यही सोच-विचारकर मैं इस परि-णाम पर पहुँची कि बिन्दा का विवाह हो रहा है और उसने मुझे बुलाया तक नहीं। इस अचिन्त्य अपमान से आहत मेरा मन गुड़ियों को साक्षी बनाकर बिन्दा को किसी भी शुभ कार्य में न बुलाने की प्रतिज्ञा करने लगा।

कई दिन बिन्दा के घर झाँककर जब मैंने माँ से उसके ससुराल से लौटने के सम्बन्ध में प्रश्न किया तब पता चला कि वह तो अपनी आकाशवासिनी अम्मा के पास चली गई। उस दिन से मैं प्रायः चमकीले तारे के आसपास फैले छोटे तारों में बिन्दा को ढूँढ़ती रहती, पर इतनी दूर से पहचानना क्या सम्भव था!

तबसे कितना समय बीत चुका है, पर बिन्दा और उसकी नई अम्मा की कहानी शेष नहीं हुई। कभी हो सकेगी या नहीं, इसे कौन बता सकता है?

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. अपने शब्दों में बिन्दा का शब्द-चित्र प्रस्तुत कीजिए।
२. इस कथा में कौन-सा मनोभाव निहित है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
३. बिन्दा की कथा के आधार पर इससे मिलती-जुलती अपनी किसी बाल-स्मृति का वर्णन कीजिए।
४. महादेवीजी की भाषा और शैली की विशेषताएँ बताइए।
५. 'बिन्दा और उसकी नई अम्मा की कहानी शेष नहीं हुई' से लेखिका का अभिप्राय क्या है?

: ७ :

घुमक्कड़-धर्म

[राहुल सांकृत्यायन]

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जन्म १८९५ में और मृत्यु १९६३ में हुई। आप आधुनिक हिन्दी-साहित्य की महान् विभूति थे। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, जीवनी, अनुसंधान के अतिरिक्त आपने धर्म, राजनीति, दर्शन और समाजशास्त्र पर भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। 'वोल्गा से गंगा', 'दर्शन-दिग्दर्शन' आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। आप संस्कृत, पाली, अपभ्रंश, हिंदी, मराठी, बंगला के अतिरिक्त अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, तिब्बती, चीनी इत्यादि कई विदेशी भाषाओं के पंडित थे। आपने देश-विदेश में भ्रमण भी खूब किया था। इसी के फलस्वरूप आपने 'घुमक्कड़-शास्त्र' नामक ग्रन्थ लिखा।

इस पाठ के द्वारा लेखक भारतीय समाज की जड़ता और स्थिति-शीलता को हमारे पतन का कारण बताते हुए प्रगति, परिवर्तन और साहस को जीवन के लिए अति आवश्यक गुण मानता है।

मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता। दुनिया दुःख में हो, चाहे सुख में, सभी समय सहारा पाती है, तो घुमक्कड़ों की ही ओर से। प्राकृतिक आदिम मनुष्य परम घुमक्कड़ था। खेती, बागवानी तथा घर-द्वार से मुक्त वह आकाश के पक्षियों की भाँति पृथ्वी पर सदा बिचरण करता था। जाड़े में अगर इस तरफ था तो गर्मियों में दो सौ कोस दूर।

आधुनिक काल में घुमक्कड़ों के काम की बात कहने की आवश्यकता है, क्योंकि लोगों ने घुमक्कड़ों की कृतियों को चुराके उन्हें गला फाड़-

फाड़कर अपने नाम से प्रकाशित किया, जिससे दुनिया जानने लगी कि वस्तुत: तेली के कोल्हू के बैल ही दुनिया में सब-कुछ करते हैं। आधुनिक विज्ञान में चार्ल्स डार्विन का स्थान बहुत ऊँचा है। उसने प्राणियों की उत्पत्ति और मानव-वंश के विकास पर ही अद्वितीय खोज नहीं की, बल्कि सारे ही विज्ञानों को उससे सहायता मिली। कहना चाहिए कि सभी विज्ञानों को डार्विन के प्रकाश में दिशा बदलनी पड़ी। लेकिन क्या डार्विन अपने महान् आविष्कारों को कर सकता था, यदि उसने घुमक्कड़ी का व्रत नहीं लिया होता ?

मैं मानता हूँ कि पुस्तकें भी कुछ-कुछ घुमक्कड़ी का रस प्रदान करती हैं, लेकिन जिस तरह फोटो देखकर आप हिमालय के देवदार के गहन वनों और श्वेत हिममुकुटित शिखरों के सौन्दर्य, उनके रूप, उनके गन्ध का अनुभव नहीं कर सकते, उसी तरह यात्रा-कथाओं से आपको उस बूँद से भेंट नहीं हो सकती, जो कि एक घुमक्कड़ को प्राप्त होती है। घुमक्कड़ दुनिया की सर्वश्रेष्ठ विभूति है, क्योंकि उसी ने आज की दुनिया को बनाया है। यदि आदिम पुरुष एक जगह नदी या तालाब के किनारे गर्म मुल्क में पड़े रहते, तो वे दुनिया को आगे नहीं ले जा सकते थे। आदमी की घुमक्कड़ी ने बहुत बार खून की नदियाँ बहाई हैं, इसमें सन्देह नहीं; और घुमक्कड़ी से हम हर्गिज नहीं चाहेंगे कि वे खून के रास्ते को पकड़ें, किन्तु अगर घुमक्कड़ों के काफिले न आते-जाते, तो सुस्त मानव जातियाँ सो जातीं, और पशु से ऊपर नहीं उठ पातीं। आदिम घुमक्कड़ों से आर्यों, शकों, हूणों ने क्या किया ? अपने खूनी पथों द्वारा मानवता के पथ को किस तरह प्रस्तुत किया, इसे इतिहास में हम उतना स्पष्ट वर्णित नहीं पाते। किन्तु मंगोल घुमक्कड़ों की करामातों को तो हम अच्छी तरह जानते हैं। बारूद, तोप, कागज, छापाखाना, दिग्दर्शक, चश्मा यही चीजें थीं, जिन्होंने पश्चिम में विज्ञानयुग का प्रारम्भ कराया और इन चीजों को वहाँ ले जानेवाले मंगोल घुमक्कड़ ही थे।

कोलम्बस और वास्को-द-गामा दोनों घुमक्कड़ ही थे, जिन्होंने पश्चिमी देशों के आगे बढ़ने का रास्ता खोला। अमेरिका अधिकतर

निर्जन-सा पड़ा था। एशिया के कूप-मंडूकों से घुमक्कड़-धर्म की महिमा भूल गई, इसीलिए उन्होंने अमेरिका पर अपनी झंडी नहीं गाड़ी। दो शताब्दियाँ पहले तक आस्ट्रेलिया खाली पड़ा था। चीन और भारत को सभ्यता का बड़ा गर्व है, लेकिन इनको इतनी अकल नहीं आई कि वहाँ जाकर अपना झंडा गाड़ आते। आज अपनी जनसंख्या के भार से भारत की भूमि दबी जा रही है, और आस्ट्रेलिया में एक करोड़ भी आदमी नहीं हैं। आज एशियाइयों के लिए आस्ट्रेलिया का द्वार बन्द है। लेकिन दो सदी पहले हमारे हाथ की चीज थी। क्यों भारत आस्ट्रेलिया की अपार सम्पत्ति और अमित भूमि से वंचित रह गया? इसलिए कि वह घुमक्कड़-धर्म से विमुख था, उसे भूल चुका था।

हाँ, मैं इसे भूलना ही कहूँगा, क्योंकि किसी समय भारत ने बड़े-बड़े नामी घुमक्कड़ पैदा किये थे। वे भारतीय घुमक्कड़ ही थे, जिन्होंने दक्षिण-पूर्व में, लंका, बर्मा, मलाया, यवद्वीप, श्याम, कम्बोज, चम्पा, बोर्निओ ही नहीं फिलिपाइन तक धावा मारा था। और एक समय तो जान पड़ा कि न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया भी बृहत्तर भारत का अंग बनने वाले हैं। लेकिन कूपमंडूकता! तेरा सर्वनाश हो! इस देश के बुद्धुओं ने उपदेश करना शुरू किया कि समुद्र के खारे पानी और हिन्दू-धर्म में बड़ा बैर है। उसके छू जाने से वह नमक की पुतली की तरह गल जाएगा! इतना बतला देने पर क्या यह कहने की आवश्यकता है कि समाज के कल्याण के लिए घुमक्कड़ धर्म कितनी आवश्यक चीज है! जिस जाति या देश ने इस धर्म को अपनाया वह चारों फलों का भागी हुआ और जिसे इसने दुराया उसके लिए नरक में भी ठिकाना नहीं। आखिर घुमक्कड़-धर्म को भूलने के कारण ही हम सात शताब्दियों तक धक्के खाते रहे। और गैर जो भी आये, हमें चार लात जमाते गए।

शायद किसी को सन्देह हो कि मैंने इस शास्त्र में जो युक्तियाँ दी हैं, वे सभी लौकिक तथा शास्त्र-बाह्य हैं। अच्छा, तो धर्म से प्रमाण लीजिए। दुनिया के अधिकतर धर्मनायक घुमक्कड़ रहे। धर्माचार्यों में आचार, बुद्धि, तर्क तथा सहृदयता में सर्वश्रेष्ठ बुद्ध घुमक्कड़राज थे।

यद्यपि वे भारत से बाहर नहीं गए, लेकिन वर्षा के तीन मासों को छोड़कर एक जगह रहना वे पाप समझते थे। वे आप ही घुमक्कड़ नहीं थे, बल्कि अपने शिष्यों को उन्होंने कहा था—'चरथ भिक्कवे चारिकं', जिसका अर्थ है—'भिक्षुओ! घुमक्कड़ी करो!' बुद्ध के भिक्षुओं ने अपने गुरु को कितना माना, क्या इसे बताने की आवश्यकता है? क्या उन्होंने पश्चिम में मकदूनिया तथा मिस्र, पूरब में जापान तक, उत्तर में मंगोलिया से लेकर दक्षिण में बाली और बाँका के द्वीपों तक को रौंदकर रख नहीं दिया? घुमक्कड़ों का इतना जोर बुद्ध से एक-दो शताब्दियों पूर्व भी था, जिसके ही कारण बुद्ध-जैसे घुमक्कड़राज इस देश में पैदा हो सके।

कोई-कोई महिलाएँ पूछती हैं—"क्या स्त्रियाँ भी घुमक्कड़ी कर सकती हैं, क्या उनको भी इस महाव्रत की दीक्षा लेनी चाहिए?" हाँ, घुमक्कड़-धर्म संकुचित धर्म नहीं है, जिसमें स्त्रियों के लिए स्थान न हो। स्त्रियाँ इसमें उतना ही अधिकार रखती हैं, जितना पुरुष। यदि वे जन्म सफल करके व्यक्ति और समाज के लिए कुछ करना चाहती हैं, तो उन्हें भी दोनों हाथों इस धर्म को स्वीकार करना चाहिए। बुद्ध ने सिर्फ पुरुषों के लिए घुमक्कड़ी करने का आदेश नहीं दिया, बल्कि स्त्रियों के लिए भी उनका वही उपदेश था।

जैन-धर्म के प्रतिष्ठापक श्रमण महावीर कौन थे? वे भी घुमक्कड़राज थे। घुमक्कड़-धर्म के आचरण में छोटी से बड़ी तक सभी बाधाओं और उपाधियों को उन्होंने त्याग दिया था। घर-द्वार और नारी-सन्तान ही नहीं वस्त्र का भी वर्जन कर दिया था। 'करतल-भिक्षा, तरुतल-वासः' तथा दिग्-अम्बर को उन्होंने इसलिए अपनाया था, कि निर्द्वन्द्व विचरण में कोई बाधा न रहे। भगवान् महावीर दूसरी, तीसरी नहीं, प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ थे। वे आजीवन घूमते ही रहे। वैशाली में जन्म लेकर विचरण करते हुए पावा में उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। बुद्ध और महावीर से बढ़कर यदि कोई त्याग, तपस्या और सहृदयता का दावा करता है, तो मैं केवल उसे दम्भी कहूँगा।

शंकराचार्य को बड़ा बनानेवाला था यही घुमक्कड़-धर्म । शंकर बराबर घूमते रहे । आज केरल देश में थे तो कुछ ही महीने बाद मिथिला में और अगले साल कश्मीर या हिमालय के किसी दूसरे भाग में । शंकर तरुणाई में ही शिवलोक सिधार गए, किन्तु थोड़े-से जीवन में उन्होंने सिर्फ तीन भाष्य ही नहीं लिखे, बल्कि अपने आचरण से अनुयायियों को वह घुमक्कड़ी का पाठ पढ़ा गए कि आज भी उसका पालन करने वाले सैंकड़ों मिलते हैं ।

महान् घुमक्कड़-धर्म बौद्ध-धर्म का लुप्त होना क्या था, तब से कूपमण्डूकता का हमारे देश में बोलबाला हो गया । सात शताब्दियाँ बीत गईं, और इन सातों शताब्दियों में दासता और परतन्त्रता हमारे देश में पैर तोड़कर बैठ गई। यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी। समाज के अगुओं ने चाहे कितना ही कूपमण्डूक बनना चाहा, लेकिन इस देश में माई के लाल जब-तब पैदा होते ही रहे, जिन्होंने कर्म-पथ की ओर संकेत किया । हमारे इतिहास में गुरु नानक का समय दूर का नहीं है । वे अपने समय के महान् घुमक्कड़ थे । उन्होंने भारत-भ्रमण को ही पर्याप्त नहीं समझा बल्कि ईरान और अरब तक का धावा मारा। घुमक्कड़ी किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायिनी नहीं है, और निर्भीक तो वह एक नम्बर का बना देती है । घुमक्कड़ नानक मक्के में जाकर काबा की ओर पैर फैलाकर सो गए। मुल्लों ने ऐतराज किया और पैर पकड़कर दूसरी ओर करना चाहा । उनको यह देखकर अचरज हुआ कि जिस तरफ घुमक्कड़ नानक का पैर घूम रहा है, काबा भी उसी ओर चला जा रहा है। यह है चमत्कार ! आज के सर्वशक्तिमान, किन्तु कोठरी में बन्द महात्माओं में है कोई ऐसा जो नानक की तरह हिम्मत और चमत्कार दिखलाए ?

दूर शताब्दियों की बात छोड़िए, अभी शताब्दी भी नहीं बीती, इस देश से स्वामी दयानन्द को बिदा हुए । स्वामी दयानन्द को ऋषि दयानन्द किसने बनाया ? घुमक्कड़-धर्म ने । उन्होंने भारत के अधिक भागों का भ्रमण किया, पुस्तक लिखते, शास्त्रार्थ करते वे बराबर भ्रमण करते

रहे। शास्त्रों को पढ़कर काशी के बड़े-बड़े पंडित महा-मण्डूक बनने में ही सफल होते रहे, इसलिए दयानन्द को मुक्तबुद्धि और तर्क-प्रधान बनाने का कारण शास्त्रों से अलग कहीं ढूंढ़ना होगा। और वह है उनका निरन्तर घुमक्कड़-धर्म का सेवन। उन्होंने समुद्र-यात्रा करने, द्वीप-द्वीपान्तरों में जाने के विरुद्ध जितनी थोथी दलीलें दी जाती थीं, सबकी चिन्दी-चिन्दी उड़ा दी और बताया कि मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं है, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है, जिसने उसे छोड़ा, वह मनुष्य होने का अधिकारी नहीं!

इतना लिखने से मालूम हो गया होगा कि संसार में यदि कोई अनादि सनातन धर्म है तो वह है घुमक्कड़-धर्म। लेकिन वह संकुचित सम्प्रदाय नहीं है; वह आकाश की तरह महान् है, समुद्र की तरह विशाल है। जिन धर्मों ने अधिक यश और महिमा प्राप्त की है, वह केवल घुमक्कड़-धर्म ही के कारण। प्रभु ईसा घुमक्कड़ थे। उनके अनुयायी भी ऐसे ही घुमक्कड़ थे, जिन्होंने ईसा के सन्देश को दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाया।

घुमक्कड़ होना आदमी के बड़े सौभाग्य की बात है। यह पन्थ अपने अनुयायी के मरने के बाद किसी काल्पनिक स्वर्ग का प्रलोभन नहीं देता। इसके लिए तो हम कह सकते हैं—'क्या खूब सौदा नग़द है, इस हाथ दो, उस हाथ लो।' घुमक्कड़ी वही कर सकता है, जो सब चिन्ताओं से मुक्त हो गया। निश्चिन्त घुमक्कड़ी के लिए चिन्ताहीन होना आवश्यक है, और चिन्ताहीन होने के लिए घुमक्कड़ी आवश्यक है। दोनों का अन्योन्याश्रयी होना दूषण नहीं, भूषण है। घुमक्कड़ी से बढ़कर सुख कहाँ मिल सकता है? आखिर चिन्ताहीनता सुख का सबसे स्पष्ट रूप है। घुमक्कड़ी में कष्ट भी होते हैं; उसे उसी तरह समझिए, जैसे भोजन में मिर्च! मिर्च में यदि कड़ुआहट न हो तो क्या कोई मिर्चप्रेमी उसमें हाथ भी लगाएगा? वस्तुतः घुमक्कड़ी में कभी-कभी होनेवाले कड़ुए अनुभव उसके रस को और बढ़ा देते हैं, उसी तरह जैसे काली पृष्ठभूमि में चित्र अधिक खिल उठता है।

जाति का भविष्य घुमक्कड़ों पर निर्भर रहता है, इसलिए मैं कहूँगा हरेक तरुण-तरुणी को घुमक्कड़-व्रत धारण करना चाहिए। इसके विरुद्ध दिये जानेवाले सारे प्रमाणों को झूठ और व्यर्थ का समझना चाहिए। यह दीक्षा वही ले सकता है, जिसमें भारी मात्रा में हर तरह का साहस हो।

दुनिया में मानुष जन्म एक ही बार होता है और जवानी भी केवल एक ही बार आती है। साहसी और मनस्वी तरुण-तरुणियों को इस अवसर से हाथ नहीं धोना चाहिए। कमर बाँध लो, भावी घुमक्कड़ो, संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. घुमक्कड़ी को लेखक ने धर्म क्यों कहा है? यहाँ धर्म शब्द से उनका क्या अभिप्राय है?

२. घुमक्कड़-धर्म के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।

३. घुमक्कड़ी से हमारे देश को क्या लाभ हो सकते हैं?

४. भारत के प्रमुख घुमक्कड़ कौन-कौन थे? उनके संक्षिप्त परिचय दीजिए।

५. अपनी किसी घुमक्कड़ी का संक्षिप्त, पर मनोरंजक वर्णन मुहावरेदार हिन्दी में लिखिए।

: ८ :

छब्बीस जनवरी

[हजारीप्रसाद द्विवेदी]

द्विवेदीजी का जन्म १६०७ में हुआ। आप हिन्दी के प्रमुख निबंधकार, उपन्यास-लेखक, आलोचक और शोधकर्ता हैं। शान्तिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में आने पर आपको एक नई चेतना और स्फूर्ति प्राप्त हुई। आपके प्रसिद्ध ग्रन्थों में 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क', 'निबन्ध-संग्रह', 'सूर साहित्य', 'हिन्दी साहित्य', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' आलोचना ग्रन्थ तथा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' अपने ढंग का अनूठा उपन्यास है।

प्रस्तुत निबन्ध में भारतीय गणतन्त्र-दिवस के गौरव पर प्रकाश डाला गया है। जिस गणतन्त्र को असंख्य देशवासियों ने अपने प्राणों की आहुति देकर प्राप्त किया है उसको स्थिर रखने के लिए चरित्र-बल तथा रचनात्मक कार्य की आवश्यकता है। जिस प्रकार काम को भस्म कर शिव महादेव बने, उसी प्रकार भारत के प्रत्येक नागरिक को मोह, वासना और स्वार्थ को त्याग एवं तप के द्वारा जीतकर महामानव बनना चाहिए।

छब्बीस जनवरी जवानों को उमंग से भर देनेवाली तिथि रही है, छब्बीस जनवरी बूढ़ों को व्याकुल कर देनेवाली तिथि रही है, छब्बीस जनवरी उत्साह और आशंका को समान भाव से वहन करनेवाली तिथि रही है। यह तिथि धर-पकड़, मार-पीट, लाठी-डंडे की स्मृति लेकर आती रही है, अत्याचार और सहनशीलता की परीक्षा का भार लेकर आती रही है। इसी महिमामयी तिथि को हमारा देश मेघमाला को विदीर्ण करके निकले हुए प्रभात-सूर्य की भाँति दिगन्त में ज्योतित होने जा

रहा है। जो लोग इस दिन आशंका से व्याकुल हो जाते थे, वे उल्लसित हो रहे हैं, पर जो लोग इस दिन उल्लसित होते थे, उन्हें आशंका होने लगी है। क्या होगा इस देश का? शत-शत जातियों-उपजातियों में विभक्त अशिक्षित जनता क्या उस महासागर को सँभाल सकेगी, जिसे बड़े-बड़े कूटनीतिज्ञों ने भी सँभालने में इतनी कठिनाई अनुभव की थी?

लेकिन जिनका विश्वास जनता पर न होकर कूटनीतिज्ञ दाँव-पेचों पर अधिक होता है, वे ही ऐसी शंका करते हैं। जिस जनता ने गांधी को अपना नेता चुना, वह अविश्वसनीय नहीं हो सकती। भारतवर्ष की जनता केवल बुद्धि-विलास, केवल कूटनीतिक चातुर्य और केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने का कौशल नहीं चाहती। वह सबसे बड़ी बात चाहती है। गांधी में उसने उसी को पाया था और आज वह जवाहरलाल में उसी बड़ी वस्तु को पा रही है। हमारी जनता ने अपने महत्व का परिचय दे दिया है। उसके हाथ में देश का भाग्य सुरक्षित है।

चरित्र-बल हमारी प्रधान-समस्या है। हमारे महान् नेता ने कूटनीतिक चातुर्य को बड़ा नहीं समझा, बुद्धि-विलास को बड़ा नहीं माना, चरित्र-बल को ही महत्व दिया है। आज हमें सबसे अधिक इसी बात को सोचना है। वह चरित्र-बल भी केवल एक व्यक्ति का नहीं समूचे देश का होना चाहिए।

दुनिया में बड़ी-बड़ी बातों की महिमा किससे छिपी है? कौन नहीं जानता कि तप बड़ी चीज है, त्याग बड़ी वस्तु है, ब्रह्मचर्य अच्छी चीज है? यह सब चाहते हैं कि लोग उन्हें त्यागी, तपी और विवेकी समझें, पर कोई ऐसी बड़ी बाधा हमारा रास्ता रोक लेती है कि हम कुछ कर ही नहीं पाते। भागवत में प्रह्लाद ने भगवान् से कहा था कि हे भगवान्, मौन-व्रत, शास्त्र-ज्ञान, अध्ययन, धर्माचरण, जप-तप, समाधि और मुक्ति-तत्व—ये सारी बातें उन लोगों के लिए केवल बहस की चीज बन जाती हैं, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर लिया। फिर लोग दम्भी हैं, उनके लिए तो यह बहस की भी बात नहीं होती।

यह ठीक है। जो अपने समस्त इन्द्रिय-समूह को वश में नहीं कर

लेता, उस असंयमी पुरुष या स्त्री के सब बड़े संकल्प उसी प्रकार व्यर्थ होते हैं, जिस प्रकार फूटे बर्तन में पानी सुरक्षित रखने का प्रयास व्यर्थ हो जाता है। इसलिए किसी महान् संकल्प के लिए दृढ़ संयम और निष्ठा सबसे पहली शर्त है।

जितेन्द्रियता चरित्र-बल की कुंजी है। वस्तुतः आजकल जिसे 'चरित्र-बल' कहा जाने लगा है, उसे ही पुराना भारत 'जितेन्द्रियता' कहता था। अपने आदर्शों के प्रति अविचल निष्ठा इसी गुण से आती है। महाभारत में कहा है कि कामवश, लोभवश, यहाँ तक कि प्राण के लिए भी धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए।

भारतवर्ष का मनुष्य न जाने कब से वैदिक ऋषियों की बनाई यह प्रार्थना करता आ रहा है कि वह कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करे, वह अदीन होकर ही धर्ममय जीवन व्यतीत करे। परन्तु चरित्र-बल न रहे तो आदमी अपने संकल्प का अर्थ भी नहीं समझना चाहता। जिस ऋषि ने इस महान् संकल्प को नित्य दुहराने की व्यवस्था की थी उसने यह भी सोचा था कि जो लोग ऐसी प्रार्थना करेंगे वे दूसरों को दीन नहीं बनाएँगे।

२६ जनवरी इसी बात को स्मरण दिलाने आती है। हमें केवल चरित्र-बल को ही नहीं बढ़ाना है, देश के चरित्र-बल को क्षीण करने-वाली शक्तियों को भी निःशक्त कर देना है। तभी जनता-जनार्दन के स्वशासन का कुछ अर्थ हो सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. चरित्र-बल किसे कहते हैं ? जीवन में इसकी आवश्यकता क्यों होती है ?

२. 'छब्बीस जनवरी' का हमारे लिए क्या महत्त्व है ? इस महत्त्व के लिए राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को स्पष्ट कीजिए।

३. चरित्र-बल के लिए कितने गुणों का होना आवश्यक है ?

४. 'जनता पर विश्वास' होने का अर्थ क्या है ?

५. श्री हजारीप्रसादजी की भाषा और शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिए ।

: ६ :

महापुरुष श्रीकृष्ण

[वासुदेवशरण अग्रवाल]

डॉ० अग्रवाल का जन्म १९०४ में हुआ। आप हिन्दी, संस्कृत तथा इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान हैं। आप काशी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। आप हिन्दी के प्रतिभाशाली और विचारशील लेखक हैं। आपने साहित्य, संस्कृति, जनपदीय साहित्य, प्राचीन साहित्य इत्यादि पर मूल्यवान लेख लिखे हैं। आपकी भाषा बड़ी प्रौढ़ और मँजी हुई होती है। एक-एक शब्द का प्रयोग आप विचारपूर्वक करते हैं। 'कल्पवृक्ष', 'पृथिवीपुत्र', 'माताभूमि' आपके ग्रन्थ हैं।

प्रस्तुत पाठ के द्वारा श्रीकृष्ण के महान् व्यक्तित्व का भव्य रूप अंकित किया गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें इनसे प्रेरणा मिल सकती है। एक ओर रास रचाने और मुरली बजानेवाले और दूसरी ओर महाभारत युद्ध का संचालन करने और गीता का उपदेश देनेवाले श्रीकृष्ण का चरित्र संसार के इतिहास में बेजोड़ है। कला, राजनीति, युद्ध, धर्म, दर्शन आदि में से प्रत्येक में श्रीकृष्ण पारंगत थे, इसीलिए उनका प्रभाव युगयुगान्तरों तक व्याप्त रहा है।

भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव-जाति के विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ता है, उनमें श्रीकृष्ण का स्थान प्रमुख है। आज से लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व एक ही समय में ऐसे दो व्यक्तियों का जन्म हुआ जिनके उदात्त मस्तिष्क की छाप हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बहुत गहरी पड़ी है। संयोग से उन दोनों का नाम 'कृष्ण' था। समकालीन इतिहास-लेखकों ने दोनों में भेद करने के लिए एक को 'द्वैपायन कृष्ण' कहा है, जिन्हें आज सारा देश महर्षि वेद व्यास के नाम से जानता है, और जिनके मस्तिष्क की अप्रतिहत प्रतिभा से आज तक हमारे धार्मिक जीवन

और विश्वासों का प्रत्येक अंग प्रभावित है। दूसरे देवकी-पुत्र कृष्ण थे, जिन्हें हम अब वास्तव में केवल 'कृष्ण' के नाम से पुकारते हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओं के मनोरम आख्यान, उनके गीता-शास्त्र के महान् उपदेश तथा महाभारत के युद्ध में उनके विविध आर्योचित कर्मों की कथाएँ आज घर-घर में प्रचलित हैं। असंख्य मनुष्यों का जीवन आज कृष्ण के आदर्श से प्रभावित होता है। वस्तुतः हमारे साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्ण-चरित्र से अनुप्राणित हुआ है। कृष्ण के जीवन की घटनाएँ केवल अतीत इतिहास के जिज्ञासुओं के कौतूहल का विषय नहीं है, वरन् वे धार्मिक जीवन की गतिविधि को नियन्त्रित करने के लिए आज भी भारतीय आकाश में चमकते हुए आकाशद्वीप की तरह सुशोभित और जीवित हैं।

अष्टमी, बुधवार, रोहिणी इस प्रकार के तिथि, वार, नक्षत्र-योग में आधी रात के समय अपने मामा औग्रसेनी कंस के बन्दीगृह में कृष्ण का जन्म हुआ। इसी बात से उस काल के राजनैतिक चक्र का आभास मिल जाता है। जिस व्यक्ति के जन्म के भय से ही उसके माता-पिता की स्वतन्त्रता छिन गई हो, क्या आश्चर्य है यदि उसके जीवन का अधिकांश समय देश के राजनैतिक वातावरण को अत्याचार और उत्पीड़न से मुक्त करने में व्यतीत हुआ हो। उस काल के जो भी उच्छृंखल, लोकपीड़क सत्ताधारी थे, उन सब से ही एक-एक करके कृष्ण की टक्कर हुई। जिस महापुरुष ने योग-समाधि के आदर्श को लेकर ब्रह्म-स्थिति प्राप्त करने का उपदेश दिया हो, जिसका अपना जीवन अविचल ज्ञान-निष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण हो, उसके जीवन में कंस-निपात से लेकर यादवों के विनाश तक की कथा एक अत्यन्त करुण कहानी के रूप में पिरोई हुई है।

कृष्ण का बाल-जीवन तो एक काव्य ही है। जन्म से लेकर अथवा उससे पूर्व ही, उनके सम्बन्ध के अतिमानवी चरित्रों का क्रम आरम्भ हो गया था और उनके वृन्दावन छोड़कर मथुरा आने के समय तक ये बाल-लीलाएँ आकाश में एकत्रित होनेवाली सुन्दर सुखद मेघमालाओं

की भाँति नाना वर्ण और रूपों से संचित होती रहीं। विना कहे ही उन्हें हम जानते हैं। हमारे देश के बाल-वर्ग के लिए तो उन कथाओं की रसमय सामग्री एक अत्यन्त प्रिय वस्तु है। यमुना नदी और उसके समीप के पीलु के विटपों पर लहलहाती हुई लताओं के कुंजों में कृष्ण के बाल-चरित्रों की प्रतिध्वनि आज भी जीवित काव्य-कथाएँ हैं। यहीं पर उन्होंने उस मल्लविद्या का अभ्यास किया जिसके कारण आगे चलकर मुष्टिक और चाणूर-जैसे पहलवान पछाड़े गए। यमुना के कछारों में ही उस संगीत और नृत्य का जन्म हुआ जो हमारी संस्कृति की एक प्रिय वस्तु है। यहीं गोवंश की वृद्धि और प्रतिपालन के वे प्रयत्न किये गए जिनका पुनरुद्धार हमारे कृषि-प्रधान देश के लिए आज भी एक प्राप्तव्य आदर्श के रूप में हमारे सामने है।

इन रमणीय बाल-चरित्रों को सुखदायी भूमिका तैयार करने के बाद श्रीकृष्ण ने एक दूसरे ही प्रकार के जगत् में प्रवेश किया। उनका वृन्दावन छोड़कर मथुरा को आना उस जगत् का देहली-द्वार है। यहाँ जीवन के कठोर सत्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके द्वार का सबसे पहला परिवर्तन शूरसेन जन-पद की राजनीति में हुआ। उग्रसेन के पुत्र लोक-पीड़क कंस को राज्यच्युत करके कृष्ण ने उग्रसेन को सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। इस समय वह और उनके बड़े भाई बलराम दोनों किशोरावस्था में पदार्पण कर चुके थे। यमुना के तट पर प्रकृति के विश्वविद्यालय में स्वच्छन्द वायु और आकाश के साथ मिलकर ग्वाल-बालों के बीच में उन्होंने जीवन की एक बड़ी तैयारी कर ली थी परन्तु मस्तिष्क की साधना का अवसर अभी तक उन्हें नहीं मिल सका था। इस कमी को पूर्ण करने के लिए वे सान्दीपनि मुनि के गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। कुल-पुरोहित गर्गाचार्य और काशी के विद्याचार्य सान्दीपनि इन दो नामों का भगवान् कृष्ण के साथ बड़ा मधुर सम्बन्ध है। अवश्य ही गीता के प्रवक्ता को अपने ज्ञान का प्रथम बीज आर्ष-ज्ञान-परम्परा की रक्षा करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणों से ही प्राप्त हुआ था।

जैसे ही सान्दीपनि ने विद्या समाप्त करके कृष्ण को 'सत्यं वद धर्मं

चर' वाला अपना अन्तिम उपदेश देकर विदा किया, वैसे ही परिस्थिति ने उनका सम्बन्ध हस्तिनापुर की राजनीति से मिला दिया। वासुदेव और उग्रसेन कृष्ण-बलदेव को लेकर कुरुक्षेत्र स्नान के लिए गये हुए थे, यहीं कुन्ती भी पाण्डवों के साथ आयी। बस यहीं कृष्ण और पाण्डवों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ जिसके कारण आज तक हम योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ का एक साथ स्मरण करते हैं। कंसवध के समय ही कृष्ण अपनी राजनीतिक प्रवृत्ति का परिचय दे चुके थे। हस्तिनापुर की राजधानी के साथ सम्पर्क होने के बाद उस प्रवृत्ति को और भी उत्तेजना मिली। उन्होंने यह अनुभव किया कि इस देश में एक बड़ा प्रबल संगठन उन राजाओं का है जो भारतीय राजनीति की प्राचीन लोकपक्षीय परम्पराओं के विरुद्ध निरंकुश होकर राजशक्ति का प्रयोग करते हैं और जिनके कारण प्रजा में क्षोभ और कष्ट है। कृष्ण का बाल-जीवन लोक की गोद में पला था। वे स्वयं यादव जाति की अन्धक वृष्णि शाखा के, जो एक गणराज्य (republic) था, सदस्य थे। इसी कारण उनकी सहानुभूति स्वभावतः लोक के साथ थी। जैसे-जैसे कारण उपस्थित होते गए, एक-एक अत्याचारी शासक से उनका संघर्ष हुआ। मगध की राजधानी गिरीब्रज में बली जरासंध का वध कराकर उन्होंने उसके पुत्र सहदेव का अभिषेक किया। महाभारत में लिखा है, उस समय पृथ्वी पर जरासंध का आतंक था, केवल अन्धक, वृष्णि और कुरु-वंशी क्षत्रियों ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इन्हीं दोनों घरानों ने मिलकर उसका अन्त कर दिया। चेदि जनपद में शिशुपाल का एकछत्र शासन था। शिशुपाल दुर्योधन की राजनीति का समर्थक था। दुर्योधन की शक्ति को निर्बल बनाने के लिए जरासंध और शिशुपाल का कण्टक निकालना आवश्यक था। तदनुसार शिशुपाल का वध करके माहिष्मति की गद्दी पर उसके पुत्र धृष्टकेतु को बैठाया। बलिष्ठ पांड्य-राज को मल्लयुद्ध में अपने वक्षस्थल की टक्कर से चूर कर डाला। सौभ-नगर में शाल्वराज को वशीभूत किया। सुदूरपूर्व के प्राग्ज्योतिष दुर्ग में भौमनरक का निरंकुश शासन था, जिसने एक सहस्र कन्याओं को अपने

बन्दीगृह में डाल रखा था। उसकी निर्मोचन नामक राजधानी में सेना-सहित मुर और नरक का वध करके कामरूप प्रदेश को स्वतन्त्र किया। बाणासुर, कलिंगराज और काशिराज इन सब को कृष्ण से लोहा लेना पड़ा और सब ही उनके बुद्धि-कौशल के आगे परास्त हुए।

कृष्ण की राजनीतिक बुद्धि अद्भुत थी। अर्जुन ने कहा था कि युद्ध न करने पर भी कृष्ण मन से जिसका अभिनन्दन करें वह सब शत्रुओं पर विजयी होगा। 'यदि मुझे वज्रधारी इन्द्र और कृष्ण में से एक को लेना पड़े तो मैं कृष्ण को लूँगा।' आर्य विष्णुगुप्त चाणक्य को भी अपनी बुद्धि पर ऐसा ही विश्वास था। उनका मंत्र अमोघ था। जहाँ कोई युक्ति न हो, वहाँ कृष्ण की युक्ति काम आती थी। धृतराष्ट्र की धारणा थी कि जब तक एक रथ पर कृष्ण, अर्जुन और अधिज्य गाण्डीव धनुष—ये तीन एक साथ हैं, तब तक ग्यारह अक्षौहिणी भारतीय सेना होने पर भी कौरवों की विजय असम्भव है।

महाभारत का युद्ध भारतीय इतिहास की एक बहुत दारुण घटना है। इस प्रलयकारी युद्ध में दुर्योधन की ओर से गान्धार, वाल्हीक, काम्बोज, केकय, सिन्धु, मद्र, तिगर्त (कांगड़ा, सारस्वतगण, मालव और अंग) आदि देशों के क्षत्रिय प्रवृत्त हुए। युधिष्ठिर की ओर से विराट, पचाल, काशि, चेटि, सृंजय आदि वंशों के क्षत्रिय युद्ध के लिये आये। ऐसे भयंकर विनाश को रोकने के लिए कृष्ण से जो प्रयत्न हो सकता था, उन्होंने किया। वे पाण्डवों की ओर से समस्त अधिकारों को लेकर सन्धि करने के लिए हस्तिनापुर गए। वहाँ उन्होंने धृतराष्ट्र की सभा में जो तेजस्वी भाषण दिया उसकी ध्वनि आज भी इतिहास में गुंजायमान है। उन्होंने कहा "कौरवों और पाण्डवों में बिना वीरों का नाश हुए ही शान्ति हो जाए, मैं यही प्रार्थना करने आया हूँ।"

धृतराष्ट्र ने कहा—"हे कृष्ण, मैं समझता हूँ, पर तुम दुर्योधन को समझा सको तो प्रयत्न करो।"

कृष्ण ने दुर्योधन से कहा—"शमेशर्म भवेत्तात' अर्थात् हे तात! शान्ति से ही तुम्हारा और जगत् का कल्याण होगा।"

दुर्योधन ने सब-कुछ सुनकर कहा—"कृष्ण ! सुई की नोक के बराबर भी भूमि पाण्डवों के लिए मैं नहीं छोड़ सकता।" बस वही युद्ध का अपरिहार्य आह्वान था। देव की इच्छा के सामने भीष्म और द्रोण-जैसे नररत्नों की भी रक्षा न हो सकी।

कृष्ण को हमारे देश के लेखकों ने सोलह कला का अवतार कहा है। इसका तात्पर्य क्या है? यह स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न वस्तु को नापने के लिए भिन्न-भिन्न परिमाणों का प्रयोग किया जाता है। दूरी के नापने के लिए और नाप है, काल के लिए और है तथा बोझे के लिए और है। इसी प्रकार मानवी पूर्णता को प्रकट करने के लिए कला की नाप है। सोलह कलाओं से चन्द्रमा का स्वरूप सम्पूर्ण होता है। मानवी आत्मा का पूर्णतम विकास भी सोलह कलाओं के द्वारा प्रकट किया जाता है। कृष्ण में सोलह कलाओं की अभिव्यक्ति थी अर्थात् मनुष्य का मस्तिष्क मानवी विकास का जो पूर्णतम आदर्श बना सकता है, वह हमे कृष्ण में मिलता है। नृत्य, गीत, वादित्र, वाग्मिता, राजनीति, योग, आध्यात्म ज्ञान सब का एकत्र समवाय कृष्ण में पाया जाता है। गोदोहन से लेकर राजसूय-यज्ञ में ब्राह्मणों के चरण धोने तक तथा सुदामा की मैत्री से लेकर युद्ध-भूमि में गीता के उपदेश तक उनकी ऊँचाई का एक पैमाना है, जिस पर सूर्य की किरणों की रंग-बिरंगी पेटी की तरह हमें आत्मिक विकास के हर एक स्वरूप का दर्शन होता है। कृष्ण भारतवर्ष के लिए एक असूल्य निधि हैं, वे हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। जिस प्रकार पूर्व और पश्चिम के समुद्रों के बीच प्रदेश को व्याप्त करके गिरिराज हिमालय पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित है, उसी प्रकार ब्रह्मधर्म और क्षात्रधर्म इन दो मर्यादाओं के बीच की उच्चता को व्याप्त करके श्रीकृष्ण-चरित्र पूर्ण मानवी-विकास के मान-दण्ड की तरह स्थित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. आप सोलह कलाओं से क्या समझते हैं? श्रीकृष्ण को सोलह कला-

सम्पन्न अवतार क्यों कहते हैं ?

२. श्रीकृष्ण के जीवन में क्या विशेषताएँ थीं ?

३. क्या आप इससे सहमत हैं कि श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के सर्व-श्रेष्ठ प्रतिनिधि थे ?

४. इस लेख से कृष्ण कालीन भारतीय राजनीति और समाज की जो तस्वीर बनती है उसे विस्तार से अपने शब्दों में बताइए।

५. उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए कि श्री वासुदेवशरण अग्रवाल की भाषा और शैली संस्कृत-गर्भित, भाव-प्रवण और मधुर है।

: १० :

प्रायश्चित्त

[भगवतीचरण वर्मा]

वर्माजी आधुनिक काल में हिन्दी के उच्च-कोटि के उपन्यासकार और कहानीकार हैं। आप का जन्म १९०३ में हुआ। 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' तथा 'भूले-बिसरे चित्र' एवं 'सामर्थ्य और सीमा' आपके लोकप्रिय उपन्यास हैं। 'इन्स्टालमेंट' और 'दो बाँके' कहानी-संग्रह हैं। आपकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता विद्रोह भावना और फड़कती हुई भाषा है। यथार्थवादी दृष्टिकोण से लिखी हुई कहानियों में आप मानवता-पूर्ण सन्देश देकर नवस्फूर्ति का संचार कर देते हैं।

'प्रायश्चित' कहानी में जहाँ हास्य और व्यंग्य की पुट है वहीं पर भारतीय समाज की सड़ी और गली हुई धार्मिक रूढ़ियों पर कुठाराघात भी किया गया है। अन्त में पुरोहित का पर्दाफाश होता है। इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि धर्म के प्रति विवेकपूर्ण बुद्धि से सोचने का प्रयास करना चाहिए।

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से, और रामू की बहू घर-भर में घृणा करती थी, तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू, दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आयी थी। भण्डारघर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा और रामू की बहू घर में सब-कुछ। सासजी ने। माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डारघर खुला है तो कभी भण्डारघर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला तो घी-दूध पर जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी

बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढँककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था। कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परच गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार था। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाजार से बालाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया बालाई गायब।

रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई, और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया। इसमें दूध, बालाई, चूहे और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यञ्जन रखे गए, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलायी। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियाँ, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाये गए, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर बिल्ली कमरे में आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देख, सूँघा,—माल अच्छा है; ताक की ऊँचाई अन्दाजी और देखा कि रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई। और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

ग्रावाज रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंक-कर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़, खीर फर्श पर ग्रौर बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी को हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न ग्राई, किस दाँव से कबरी पर बार किया जाए कि फिर जिन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई ग्रौर वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू का बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी है। मौका हाथ में ग्रा गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, वरन् एक दम उलट गई।

ग्रावाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर ग्रौर सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सिर झुकाये हुए ग्रपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—"ग्ररे राम, बिल्ली तो मर गई, माँजी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुग्रा।"

मिसरानी बोली—"माँजी, बिल्ली की हत्या ग्रौर ग्रादमी की हत्या बराबर है, हम तो रसोई न बनायेंगी, जब तक बहू, के सिर हत्या रहेगी।"

सासजी बोली—"हाँ, ठीक तो कहती हो ग्रब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाए तब तक न कोई पानी पी सकता है न खाना खा सकता है। बहू यह क्या कर डाला।"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुलाय लाई।"

सास की जान-में-जान आई—"अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पडिण्तजी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई—पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुस्कराते हुए बोले—"भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पण्डित परमसुख चौबे, मोटे-से आदमी थे। लम्बाई चार फुट दस इंच, और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराकवाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था, तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था। पण्डित परमसुख पहुँचे और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख! बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा—"पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?"

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—"बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह मुहूर्त भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई, तब नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह।"—मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया—"हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में बिल्ली

की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है ! रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ !"

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गए—"तो फिर पण्डितजी अब क्या होगा आप ही बतलाइए।"

पण्डित परमसुख मुस्कराये—"रामू की माँ चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित्त से सब ठीक हो जाएगा।"

रामू की माँ ने कहा—"पण्डितजी, उसी के लिए तो आपको बुलाया था, अब आगे बताओ कि क्या किया जाए ?"

"किया क्या जाए, यही एक सोने की बिल्ली बनाकर बहू से दान करवा दिया जाए। जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी, तब तक घर अपवित्र रहेगा। बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाए।"

छन्नू की दादी—"हाँ और क्या, पण्डितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाए, पाठ फिर हो जाए।"

रामू की माँ ने कहा—"तो पण्डितजी, कितने तोले की बनवाई जाए ?"

पण्डित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाए ? अरे रामू की माँ, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवाई जाए; लेकिन अब कलयुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की माँ, बिल्ली के तौल-भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, हाँ कम-से-कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा !"

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—"अरे बाप रे, इक्कीस तोला सोना ? पण्डितजी, यह तो बहुत है तोला-भर की बिल्ली से काम न निकलेगा ?"

पण्डित परमसुख हँस पड़े—"रामू की माँ ! एक तोला सोने की

बिल्ली ! अरे रुपया का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है, इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा—"उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं, रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा का सामान कितना लगेगा ?"

"अरे, कम-से-कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन-भर नमक भी लगेगा। बस इतने से काम चल जाएगा।"

"अरे बाप रे, इतना सामान ! पण्डितजी इसमें तो सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जाएगा।" रामू की माँ ने रुआँसी होकर कहा।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ ! खर्च को देखते वक्त पहले बहू के पाप को देख लो ! यह तो प्रायश्चित्त है कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा ; प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।"

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की माँ ने कहा—"पण्डितजी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।"

छन्नू की दादी ने कहा—"और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं—दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं।"

मिसरानी ने कहा—"और फिर माँजी आप लोग तो बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।"

राम की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डितजी के साथ। पण्डित परमसुख मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा—"रामू की माँ! एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्च है। सो उससे मुँह न मोड़ो।"

एक ठण्डी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा—"अब तो जो नाच नचाओगे नाचना ही पड़ेगा।"

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़कर बोले—"रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है-अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो, मैं चला।" इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पण्डितजी, रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न।" मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पण्डितजी के पैर पकड़े—और पण्डितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

"और क्या हो?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्रह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।" कुछ रुककर पण्डित सरमसुख ने कहा—"सो इसकी चिन्ता न करो। मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्रह्मणों के भोजन का फल मिल जाएगा।"

"यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो!" मिसरानी ने मुस्कराते हुए पण्डितजी पर व्यंग्य किया।

"अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूँगा, तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो और पूजा के लिए—"

पण्डितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई, और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबरा

कर कहा—"अरी, क्या हुआ री।"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—"माँजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई!"

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. इस कहानी में प्रायश्चित्त किस का हुआ और कैसे ?
२. इस कहानी में लेखक के उद्देश्य की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
३. रामू की बहू, रामू की माँ और पण्डित परमसुख की चारित्रिक विशेषताओं पर टिप्पणियाँ लिखिए।
४. यह कहानी किस कोटि की है—भाव-प्रधान, विचार प्रधान या घटना-प्रधान।
५. कहानी में कथानक और शीर्षक का क्या महत्त्व है ?

: १२ :

विद्युत-तरंगों के चमत्कार

[भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव]

श्रीवास्तवजी का जन्म १६११ में हुआ। आपने वैज्ञानिक विषयों पर स्पष्ट और सुबोध शैली में महत्त्वपूर्ण साहित्य रचा है। कठिन और दुरूह विषय को सरल ढंग से साधारण पढ़े-लिखों के लिए ग्राह्य बना देना इनकी अपनी विशेषता है। 'विज्ञान के चमत्कार, 'परमाणु शक्ति', 'भौतिक विज्ञान', 'विज्ञान की प्रगति' आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत निबन्ध में बिजली की तरंगों के भिन्न-भिन्न रूपों का विश्लेषण किया गया है। इन तरंगों के असंख्य गुण हैं और लाभ भी अनन्त हैं। विद्युत-तरंगों तथा विद्युत-चुम्बकीय शक्ति के विभिन्न रूपों पर किये गए प्रयोगों और अनुसन्धानों से भविष्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सकते हैं।

बिजली का प्रयोग हमारे रोजमर्रा के कामों में बढ़ता ही जा रहा है, अतः विद्युत के सम्बन्ध में नित्य ही अनुसन्धान का काम जोरों पर हो रहा है। मनुष्य ने तार-टेलीफोन ईजाद किये, फिर इससे भी सन्तुष्ट न होकर उसने बिना तार के शून्य में बोलने की कला हासिल की। विद्युत-तरंगों को अपने वश में करके आज वह सात समुन्दर-पार रेडियो-सेट द्वारा अपनी आवाज पहुँचाता है। यही नहीं, रेडियो-तरंगों की ही बदौलत उसने अब दिव्य-दृष्टि भी प्राप्त कर ली है—सैकड़ों कोस की दूरी पर बैठा हुआ वह दूर की घटनाओं को भी उसी क्षण, जब कि वे हो रही हों, टेलीविजन द्वारा देख सकता है।

रेडियो-तरंगों के रूप में वैज्ञानिक को मानो अलादीन का चिराग मिल गया है। रेडियो-तरंगों की अपरिमित शक्ति को वश में करके

आज का मनुष्य उनसे अनेक प्रकार का काम कराना चाहता है। इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति में उसे सफलता भी अवश्य मिलेगी। यही कारण है कि वह रेडियो तरंगों के साथ वैज्ञानिक प्रयोगशाला की दीवारों के अन्दर एकाग्रचित्त हो तरह-तरह के प्रयोग कर रहा है। रेडियो-तरंगों के बारे में भी पूरी जानकारी हासिल करना चाहता है, ताकि इस जानकारी से फायदा उठाकर वह उन्हें पूर्णतया अपने वश में कर सके—और तभी वह इस स्थिति में होगा कि रेडियो-तरंगों से पूरा-पूरा लाभ उठा सके।

बहुत थोड़े ही काल के अनुसन्धान ने इस क्षेत्र में हमारी जानकारी खूब बढ़ा दी है। वैज्ञानिक हमें बताता है कि वास्तव में प्रकाश-तरंगें उष्णता की लहरें और रेडियो-तरंगें तथा एक्स-रे सब एक ही जाति की चीजें है। सभी तरंगें विद्युत चुम्बकीय शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं, केवल उनकी लहरों की लम्बाई का अन्तर है। रेडियो-बेतार की तरंगों की लहर-लम्बाई ज्यादा होती है। इसके बाद उष्णता की किरणें आती हैं, फिर साधारण प्रकाश की तरंगें, अल्ट्रा-वायलेट रश्मियाँ और एक्स-रे की तरंगें। एक्स-रे की तरंगों की लहर-लम्बाई बहुत ही कम होती है, इन तरंगों की लहर-लम्बाई जितनी कम होती जाती है, उतनी ही ज्यादा इनकी शक्ति भी बढ़ती जाती है। तरंगों के अन्य गुण भी लहर-लम्बाई के साथ बदलते जाते हैं।

अल्ट्रा-वायलेट रश्मियाँ (पराकासनी किरणें) तथा उष्णता की तरंगें साधारण प्रकाश की तरंगों से लहर-लम्बाई में तनिक ही भिन्न हैं, किन्तु इस थोड़े-से अन्तर के कारण गुण में काफी फर्क आ गया है। आलोक-रश्मियों से आपका दृष्टिपटल प्रभावित होता है, किन्तु उष्णता की तरंगों और अल्ट्रा-वायलेट रश्मियों का अनुभव आपकी आँखें नहीं कर सकतीं। हाँ, आपके शरीर की त्वचा पर इन रश्मियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। लाल रंग के प्रकाश से तनिक और गाड़ा लाल 'इन्फ्रा रेड-रे' है। इसे आप अपनी आँखों से नहीं देख सकते, किन्तु आपका कैमरा इन रश्मियों को बखूबी ग्रहण कर लेता है नतीजा यह होता

है कि एकदम अंधेरे में जबकि आपको कुछ भी नहीं दिखाई देता हो इन्फ्रा रेड-रे की सहायता से कैमरे द्वारा फोटो ली जा सकती है। इन रश्मियों में यह भी गुण मौजूद रहता है कि कुहरे को यह भेद सकती हैं। अतः कुहरे से ढके हुए पहाड़ी प्रान्त की फोटो आप यदि इन्फ्रा रेड-रे की मदद से लें, तो एकदम साफ फोटो उभड़ती है, मानो आपने धूप में फोटो ली हो।

रेडियो-वाल्व के सुप्रसिद्ध आविष्कर्ता डाक्टर फास्ट का कहना है कि निकट भविष्य में प्रत्येक घर में दो ऐन्द्रजालिक स्वास्थ्यप्रद कोठरियों के बन सकने की सम्भावना प्रतीत होती है—ऐसी कोठरियाँ जिनमें १०-१५ मिनट प्रतिदिन बिताने से मनुष्य अपना स्वास्थ्य निर्दोष बनाये रख सकेंगे। इन स्वास्थ्यप्रद कोठरियों के प्रभाव से डाक्टरों की प्रायः आवश्यकता नहीं रहेगी'। ऐसी कोठरी में दीवारों में छिपे तारों से अति तीव्र विद्युत-तरंगें निकलेंगी। इनका प्रभाव कोठरी में बैठे हुए लोगों के लिए स्वास्थ्यप्रद, शक्तिवर्द्धक और सुखकर होगा।

मध्य जाड़े में मसूरी और नैनीताल में भी लोग दरवाजे और खिड़कियाँ खोलकर बैठ सकेंगे और सो भी केवल धोती-कुर्ता पहनकर, क्योंकि इन अति तीव्र विद्युत-तरंगों से मनुष्य को आनन्दमयी गर्मी मिला करेगी। इन तरंगों के प्रभाव से कोठरी में भी पौधे और फूल उग सकेंगे। अँधेरा होने के बाद मनुष्य 'नियॉन' के समान किसी गैस से जलती हुई बत्ती उठाकर जहाँ चाहे ले जा सकेगा, तार की आवश्यकता न रहेगी। ऐसी बत्ती को मनुष्य सुविधानुसार मेज पर या ताक पर रख सकेगा और बत्ती बराबर जलती और अपने सुन्दर प्रकाश से घर की शोभा बढ़ाती रहेगी।

यही नहीं, रेडियो-विद्या-विशारदों का तो दावा है कि शीघ्र ही वे इतनी शक्तिशाली रेडियो-तरंगें बना सकेंगे जो मोटर के इंजिन, हवाई जहाज तथा अन्य किसी भी मशीन को बेकार बना देंगी। निस्सन्देह इस तरह की तरंगें युद्धस्थल के लिये महत्वपूर्ण साबित होंगी। रोम में अभी कुछ साल पहले स्वर्गीय मार्कोनी ने, जिसे रेडियो का जन्मदाता कहा

जाता है, रेडियो की विशेष ढंग की तरंगें तैयार की थीं। प्रयोगशाला से खिड़की के रास्ते से ये तरंगें बाहर सड़क पर भेजी जा रही थीं। मोटर ज्यों ही खिड़की के सामने पहुँची, त्यों ही तरंगों के कारण उसका इंजिन एकदम बेकार हो गया।

रेडियो-तरंगों की उपयोगिता के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों ने बड़ी-बड़ी आशाएँ लगा रखी हैं। कुछ लोगों का खयाल है कि वह दिन भी दूर नहीं है जब रेडियो तरंगों की मदद से सुगन्ध और स्वाद भी ब्राडकास्ट किया जा सकेगा। आप ट्रांसमीटर के सामने लखनऊ का सफेदा आम रखेंगे और लन्दन में रेडियो-रिवीसर के सामने बैठा आपका मित्र उसका स्वाद लेता रहेगा।

तीव्र रेडियो-तरंगों की तलाश भी सरगर्मी के साथ की जा रही है। ऐसी तीव्रतर रेडियो-तरंगें उत्पन्न करने के लिये अनुसन्धान किये जा रहे हैं जो मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों के लिए घातक सिद्ध हों। जिस दिन वैज्ञानिक इन तरंगों को प्रयोगशाला में तैयार कर सका, मनुष्य के हाथ में एक जबर्दस्त शक्ति आ जाएगी। कौन कह सकता है कि डायनामाइट, विषैली गैस और विस्फोटक पदार्थों की तरह वह इनका भी दुरुपयोग न करेगा ?

किन्तु हताश होने की जरूरत नहीं; टेलीविजन तरंगों का प्रयोग मानव-जाति के कल्याण के लिये एक बहुत ही वसीह पैमाने पर किया जा रहा है। टेलीविजन तरंगों ने चिकित्सा-शास्त्र में एक सर्वथा नई प्रणाली का प्रादुर्भाव किया है। यद्यपि टेलीविजन चिकित्सा सर्वरोग-निवारक नहीं कही जा सकती, फिर भी निकट भविष्य में ही रोगों पर विजय प्राप्त करने में हमारे लिये एक अद्वितीय अस्त्र सिद्ध होगी।

विभिन्न तरीकों से इन विद्युत-तरंगों का प्रयोग शरीर की चिकित्सा के लिये किया जाता है। शरीर का अंग-विशेष, जिसकी चिकित्सा करनी होती है, विद्युत धाराओं के सीधे रास्ते में रख दिया जाता है। दोनों 'विद्युत-पट' जिनके बीच में शरीर का वह अंग रखा जाता है, एक दूसरे से १०० वोल्ट के क्रम पर रहते हैं। कभी-कभी वैकुअम ट्यूब

से विद्युत-तरंगें शरीर में प्रविष्ट कराई जाती हैं। वैकुअम ट्यूब द्वारा विद्युत-तरंगें ब्रश डिस्चार्ज द्वारा शरीर में प्रवेश करती हैं—ट्यूब से नन्हीं-नन्हीं चिनगारियाँ शरीर में प्रवेश करती हुई दिखाई देती हैं। विद्युत-चिकित्सा में छल्लेनुमा बिजली के तार (सालिनायड) का भी प्रयोग किया जाता है। विशालकाय छल्ले (सालिनाइड) के बीचोंबीच रोगी को लिटा दिया जाता है। जिस समय सालिनायड में विद्युत-धारा का प्रवाह होने लगता है, रोगी के शरीर पर विद्युत-चुम्बकीय असर होता है। इस प्रकार रोगी का पूरा शरीर सालिनायड की क्षेत्रशक्ति से प्रभावित होता है। सालिनायड पद्धति की चिकित्सा का प्रभाव रक्त-प्रवाह पर और खासकर रक्तचाप (ब्लडप्रेसर) पर पड़ता है। ऐसा खयाल किया जाता है कि इस उपचार से शरीर के स्नायुओं पर शान्ति-प्रद प्रभाव पड़ता है। ये विद्युत-तरंगें हमारे रोगों को किस तरह दूर करती हैं? इसका सही-सही उत्तर तो अभी नहीं दिया जा सकता, इतना अवश्य मालूम है कि इन विद्युत-तरंगों के प्रभाव से शरीर के अंग-विशेष में गर्मी पैदा होती है और इस कारण उसके रक्त का संचालन तेज हो जाता है। अतः उस अंग में यदि पीड़ा हो रही हो तो वह रक्त-संचालन के बढ़ जाने से जल्दी दूर हो जाती है।

तीव्रतर विद्युत-तरंगें कीटाणु सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा में भी विशेष उपयोगी साबित हुई हैं। राजयक्ष्मा, दमा आदि रोग इस नवीन चिकित्सा-प्रणाली द्वारा आसानी से दूर किये जा सकते हैं। चर्मरोग, शोथ, हड्डियों के रोग, कलेजे और गुर्दे के रोग भी इस चिकित्सा पद्धति से दूर किए जा चुके हैं।

तीव्र विद्युत-तरंगों की चिकित्सा प्रणाली पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से आजमायी जा रही है। इस दरम्यान इन तरंगों की मदद से अनेक मस्तिष्क-विकार के रोगी भी अच्छे किये जा चुके हैं।

बिगड़े हुए घावों में, जिनमें पीव भर गया हो तथा इसी प्रकार के अन्य रोगों में यह चिकित्सा-प्रणाली रामबाण का काम करती है। कीटाणुओं का नाश करने में भी विद्युत-तरंगें अद्वितीय हैं।

विद्युत-तरंगों का परिचय विज्ञान संसार को कोई ४० वर्ष पहले हुआ। इतने थोड़े काल में मनुष्य ने इन्हें अपने वश में करके आश्चर्यजनक करतब पर दिखाये हैं, और अभी कहा नहीं जा सकता कि क्षितिज के उस पार क्या छिपा हुआ है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. बिजली से किन-किन वस्तुओं का आविष्कार हुआ?

२. प्रकाश-तरंगें उष्णता की लहरें, रेडियो-तरंगें तथा एक्स-रे क्या हैं?

३. अल्ट्रा-वायलेट-रे, इन्फ्रा रेड-रे तथा टेलीविज़न तरंगों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये।

४. वैज्ञानिक आविष्कार मानव-जाति के लिये घातक हैं या लाभकारी? सबल तर्क के द्वारा अपने मन्तव्य को प्रकट कीजिये।

५. वैज्ञानिक साहित्य की रचना के लिए अंग्रेजी शब्दावली आवश्यक है या नहीं—अपनी सम्मति दीजिए।

: १२ :

रामलीला

[राधाकृष्ण]

हास्य और व्यंग्य के क्षेत्र में युगान्तर लाने वाले लेखकों में आपकी गणना होती है। प्रस्तुत कहानी बड़ी मार्मिक है। मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। जब वह बालक होता है तब उसके भोले भाले चेहरे में दिव्यता के दर्शन होते हैं; किन्तु यही राम-सा दिखने वाला बालक अशिक्षा और गरीबी के कारण कुचक्र और कुसंग में पड़कर रावण बन जाता है : निष्कर्ष यह निकला कि राम और रावण के निर्माण में परिस्थिति का भी हाथ है।

पेशे में कोई पेशा हुआ भी तो रामलीला का दल रखने का पेशा हुआ ! दूकानदारी का पेशा होता, जमींदारी होती, महाजनी होती, कोई भी, कैसा भी पेशा होता, तो एक बात थी। मगर रामलीला का दल रखने का पेशा—सो भी यह खानदानी पेशा है। सात पुश्तों से रामलीला का दल चला आता है। रामरतन जरा आधुनिक बुद्धि का आदमी है; सो अपने इस पेशे को पसन्द नहीं करता। मगर खानदानी चीज है। रामलीला वह छोड़ नहीं सकता, अपना दल तोड़ नहीं सकता।

मगर ये जो ऐरै-गैरे नत्थू-खैरे आकर राम बनते हैं, लक्ष्मण बनते हैं, वशिष्ठ और विश्वामित्र बन जाते हैं, सो रामरतन को पसन्द नहीं। यह इस प्रकार राम की पैरोडी हो जाती है। लक्ष्मण का उपहास हो जाता है, राजा की मट्टी पलीद होती है और महाज्ञानी वशिष्ठ से मुँह से ज्ञान के बदले अज्ञान ही ज्यादा निकलता है। सो रामरतन रामलीला के इस पुराने ढर्रे में परिवर्तन करेगा।

और, इसीलिए रामरतन पाँच दिन से परेशान है। वह कोई ऐसा बालक खोज रहा है, जो राम का पार्ट कर सके। ऐसे ही किसी साँवले-सलोने बालक की खोज में वह घूम रहा है। तमाम ढूँढ़ आया लेकिन रामरतन को ऐसा बालक नहीं मिलता। जो देखने में आते हैं, वे जी को जँचते नहीं। सब में एक-दो त्रुटियाँ अवश्य आगे आ जाती हैं। वैसा मनचाहा बालक नहीं मिलता। जाने मिलेगा भी या नहीं।

पाँचवें दिन रामरतन निराश हो गया। जब राम ही नहीं तो रामलीला क्या होगी! वह थक गया; शरीर से भी, मन से भी उसे लगा जैसे वह कूड़े के अन्दर शालिग्राम ढूँढ़ रहा है। भला कहाँ मिलेगा? उसे लगा कि इस इतनी बड़ी धरती पर वह सबसे ज्यादा लाचार प्राणी है। उसकी परेशानी में कोई उसका सहारा नहीं हो सकता। यह रामलीला का दल न हुआ परेशानी का भण्डार हो गया। वह थक कर पार्क की एक बेंच पर बैठ गया। अगर राम का काम करने वाला बालक नहीं मिला, तो फिर रामलीला कैसे होगी?

वह देखता है कि एक वैसा ही अबोध, वैसा ही भोला, निर्मल निश्छल, साँवला सलोना-बालक पार्क में तितलियों के पीछे दौड़ रहा है। कौन लड़का है? किसका लड़का है। अगर यह राम का पार्ट करे तब तो फिर कुछ कहना ही नहीं!

उसने बालक को बुलाया। अपने पास बिठाकर उससे तरह-तरह की बातें पूछने लगा। लड़के ने कहा—"मेरे पिता नहीं, माँ है। वह क्या करती है, सो मैं नहीं जानता। हमारे घर में तीन गायें हैं। माँ उनका दूध दुहती है। एक ग्वाला आकर उसका दाम दे जाता है। हमारे एक मामा हैं सो बड़ी दूर रहते हैं। रंगून कहाँ है, जानते हो? हमारे मामा वहीं नौकरी करते हैं। जब वे आयेंगे तो मेरे लिए एक दोना मिठाई लायेंगे और एक रबर की गेंद। फिर वे मेरे लिए कोट सिला देंगे और हॉफ-पैंट खरीद देंगे। फिर कोई तकलीफ नहीं रहेगी।"

इस बालक को पाकर रामरतन ने मानो आसमान का चाँद पा लिया। राम के लायक ऐसा बालक मिलना असम्भव था। थोड़ी देर के बाद वह

उस बालक की माँ के सामने खड़ा था और उसकी शंकाओं का समाधान कर रहा था। उसकी माँ को जो हिचक थी, सो रुपयों की आवाज सुनते ही मिट गई।

रामरतन ने बालक से पूछा—"क्यों भाई राम का पार्ट करोगे न ?"

"करूँगा !"—बालक ने सरलता से जवाब दिया।

"तीर चलाकर तब तुम ताड़का को कैसे मारोगे ?"

बालक ने छोटी-सी धनुही से तीर का ऐसा सरल सन्धान किया कि रामरतन खुशी से निहाल हो उठा। ऐसा बढ़िया बालक कभी नहीं मिलेगा। कहीं नहीं मिलेगा। यह बालक राम का प्रतिरूप है। राम का अभिनय इसके माध्यम से सत्य और साकार हो उठा है।

और दूसरे दिन से ही रामलीला में दर्शकों की भीड़ तिगुनी-चौगुनी होने लगी। वह बालक राम के रूप और अभिनय को सार्थक कर रहा था।

× × ×

और यों बाईस वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों की बड़ी लम्बी अनेकानेक कहानियाँ हैं। रामरतन की रामलीला पार्टी आज भारतवर्ष में विख्यात है। पार्टी के पास धन है, सम्मान है, प्रतिष्ठा है। मगर फिर भी रामरतन को शान्ति नहीं। अब उसकी पार्टी ग्वालियर में आई है। राजा ने खासतौर पर उसकी रामलीला पार्टी को निमंत्रण दिया है। लोग उत्सुक हैं। मगर रामरतन जान-बूझकर पन्द्रह दिनों से देर कर रहा है। उसके पास रावण की कमी है। जो व्यक्ति रावण का काम करता है, वह रामरतन को ही पसन्द नहीं फिर उसे ग्वालियर-नरेश कैसे पसन्द करेंगे ? इतनी बड़ी पृथ्वी पर उसे एक रावण नहीं मिलता। रामरतन रावण खोज रहा है और परेशान हो रहा है। रावण की प्रतिच्छवि कहीं दीखती नहीं। उस रावण के भयानक चेहरे पर क्रोध था, हिंसा थी। उसके भारी गले से कर्कश आवाज निकलती थी। हाँ, ऐसा ही रावण होना चाहिए, ऐसा ही रावण रामलीला में सजेगा, ऐसा

ही रावण जगत्-माता जानकी का हरण कर सकता है।

और, आखिर ऐसा ही एक व्यक्ति उसे एक शराबखाने में दिखलाई दिया। उसके चेहरे पर अभिमान और क्रूरता थी। कर्कश कण्ठ से गालियों की बौछार निकल रही थी। दूकानदार से वह मुफ्त में शराब माँग रहा था; लेकिन शराब के बदले दोनों में बेशुमार गालियों का विनिमय होने लगा था। हाँ, यही व्यक्ति है, जो चाहे तो रावण बन कर सचमुच सज सकता है। चेहरे पर कैसी भयानकता है, आँखों में कितना कमीनापन है! यह साधु का कपट-वेश धारण करके सीता के पास जायगा तब भी मन, वाणी और रूप की भयानकता नहीं मिटेगी। देखते ही लोग कह देंगे, यही रावण है, कपटी, बदमाश!......

रामरतन आगे बढ़ गया और दूकानदार के सामने चवन्नी फेंककर बोला—"भाई मेरी ओर से इन्हें पिला दो; एक बोतल!"

ऐं! रावण की प्रतिच्छविवाला बोला—"तू तो बड़ा दयावान है यार! बतला मैं तेरा क्या काम करूँ? तू मुझसे क्या काम लेगा?"

रामरतन ने कहा—"मेरी एक रामलीला पार्टी है; मैं उसमें तुम्हें रावण का पार्ट देना चाहता हूँ।

"रावण!···अच्छा मैं करूँगा।"

और, सचमुच उसके द्वारा रावण का काम सबसे अच्छा हुआ। रामलीला समाप्त होने के बाद रामरतन ने उससे पूछा—"बोलो आज पुरस्कार में तुम्हें क्या दूँ?"

रावण ने कहा—"मैं आपसे पहले भी बहुत-कुछ पा चुका हूँ; अब आज क्या माँगूँ?"

"पहले" रामरतन ने आश्चर्य से कहा—"मैंने तो पहले तुम्हें कभी देखा भी नहीं!"

"हाँ, आप मुझे नहीं पहचान सके, लेकिन मैंने आपको पहले दिन ही पहचान लिया था। मैं वही आदमी हूँ, जो लड़कपन में आपके यहाँ राम का पार्ट किया करता था। उसके बाद मेरे मामा आकर मुझे ले गए। याद कीजिये। मैं वही आदमी हूँ। एक दिन आपके यहाँ मैं राम

बनता था। याद आया ?"

हाँ, रामरतन को अब सब याद आ गया। रावण के उस भयानक चेहरे के भीतर से रामरतन को राम की वही साँवली-सलोनी निर्मल छबि फूटती हुई-सी दिखलाई पड़ी। वह आश्चर्य से चकित होकर बोल उठा—"हाँ तुम वही राम हो। मुझे याद आ गया। तुम वही राम हो।"

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. किन कारणों से एक ही व्यक्ति राम भी बन जाता है और रावण भी ?
२. क्या आपकी राय में इस कहानी का शीर्षक ठीक है ? यदि हाँ तो क्यों और नहीं तो क्यों नहीं ?
३. व्यंग्य से आप क्या समझते हैं ? क्या रामलीला कहानी में हास्य और व्यंग्य भी है ?
४. इस कहानी में आये हुए मुहावरों का भावार्थ समझाइए।
५. इस कहानी का संक्षिप्त सार प्रस्तुत कीजिए।

: १३ :

पृथ्वीराज की आँखें

[रामकुमार वर्मा]

वर्माजी का जन्म १९०५ में हुआ। आपको हिन्दी एकांकी का जन्मदाता कहा जाता है। आपने एकांकियों में भारतीय आदर्शों की प्रतिष्ठा की है। वर्माजी के नाटक ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के हैं। 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा,' इत्यादि आपके प्रमुख एकांकी-संग्रह हैं।

प्रस्तुत एकांकी में शहाबुद्दीन गोरी तथा पृथ्वीराज के चरित्रों की विशेषताओं को—एक की क्रूरता और दूसरे की करुणा को—मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है।

पात्र

पृथ्वीराज चौहान—दिल्ली और अजमेर का राजा।

चन्द—महाकवि और पृथ्वीराज का मित्र।

शहाबुद्दीन गोरी—गोरी का सुलतान (सन् ११९२)।

अख्तर – एक सिपाही।

काल : तराइन के युद्ध के उपरान्त।

[सन्ध्या का समय। गोर के किले में पृथ्वीराज कैद है। वह पैंतालीस वर्ष का प्रौढ़ व्यक्ति है। उसके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा है। चढ़ी हुई मूँछें और रोबीला चेहरा। उसके हाथ साँकलों से बँधे हैं। वह अपने घुटनों पर दोनों हाथ रखे हुए सिर झुकाये बैठा है। साँकल का एक छोर उसके पैरों तक लटक रहा है, जो हाथों के संचालन-मात्र से ही झूलकर शब्द करने लगता है। उसके बाल बिखरे हुए हैं। डाढ़ी बढ़ आई है। वस्त्र मैले हो गए हैं। कहीं-कहीं जलने के निशान भी पड़ गए हैं। घुटने के पास फटा हुआ चूड़ीदार पायजामा है, जिस

पर रक्त के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं। पैर में पुराना जूता है, जिस पर गर्द छा रही है। पृथ्वीराज आँखें बन्द किये हैं। सामने खिड़की से हवा आ रही है, जिससे बाल हिल रहे हैं। कुछ समय पहले थोड़ा पानी बरस चुका है, इसलिए वायु में शीतलता आ गई है।

दाहिनी ओर महाकवि चन्द बैठा हुआ है। उसकी आयु पृथ्वीराज की आयु के लगभग है। उसके कपड़े साफ-सुथरे हैं। वेष में सादगी है, पर मुख पर दुःख की रेखाएँ अंकित हैं। वह पृथ्वीराज को करुणापूर्ण आँखों से देख रहा है। कुछ क्षणों तक दोनों स्थिर बैठे रहते हैं। फिर वेदना से सिहरकर पृथ्वीराज नीचा मुख किये ही, व्यथित स्वर में बोलता है। बोलने के साथ-साथ हिलने से साँकल बजती है।]

पृथ्वीराज—मत पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया उसकी—उस निर्दय क्षण की—बात मत पूछो! बड़ी कठिनाई से उस कष्ट को भुला सका हूँ। चन्द! आखेट करते समय व्याघ्र के पंजे भी मुझे इस तीक्ष्णता से नहीं लगे। आह! **(सिर झुकाकर सोचता है।)**

चन्द—**(दयार्द्र होकर)** महाराज, यह आपका शरीर, जिससे शौर्य पसीना बनकर बहा करता था, आज इतना निस्तेज है! क्या गोर के आदमी इतने निर्दय होते हैं? एक शक्तिशाली राजा के साथ इतना पशुत्व!

पृथ्वीराज—पशुत्व! ओह, चन्द! यदि उस समय तुम होते, तो काँप जाते! तुम्हारी लेखनी कुण्ठित हो जाती! मनुष्यता थर्रा उठती! आश्चर्य है, माता वसुन्धरा यह सब कृत्य कैसे देखती रही! और, इस पृथ्वीराज के शरीर पर इतना अत्याचार देख लेने पर भी वह माता कहला सकती है? कवि, घोषणा कर दो कि वह वसुन्धरा माता नहीं, पिशाचिनी है! **(भावोन्मेष में काँपता है।)**

चन्द—महाराज!

पृथ्वीराज—**(उसी भावावेश में)** और यह हवा! इस समय शरीर से लगकर सुख देना चाहती है? पर उस समय? पापिनी……!

(घृणा-प्रदर्शन)

चन्द—यह उन्माद !

पृथ्वीराज—(तीव्रता से) चुप रहो, चन्द ! इतना सहने के बाद भी मैं जीवित हूँ, आश्चर्य है । भयंकर रात थी । प्रेयसी संयोगिता के बिना यह रात हवसिन बन गई थी । अन्धकार जैसे मेरी ओर घूर रहा था, मेरी आँखों में घुसकर ! इतने में चार मशालें दिखलाई दीं । उनकी लौ इधर-उधर झूम रही थी, जैसे अन्धकार रूपी काले दैत्य की जिह्वाएँ हों (सोचते हुए) पाँच आदमी सामने आये । चार मशालची और एक उनका सरदार । सरदार के हाथ में एक छुरा था । वह बोला—'कैदी, आँखें निकाली जाएँगी' ! (शैथिल्य-प्रदर्शन)

चन्द—यह धृष्टता ! (भौंहें सिकोड़ता है)

पृथ्वीराज—(उसी स्वर में) मैंने कहा·· मैंने कहा, कैद करने के बाद यह जुल्म ? मनुष्यता से रहना सीखो, खुदा के बन्दो ! जान से मार डालो, पर एक राजा की इज्जत रहने दो ! चन्द, उसने कहा, 'चुप रह' ! (गहरी साँस लेता है ।)

चन्द—(तड़प कर) क्या कहा ? चुप रह !

पृथ्वीराज—हाँ, यही कहा । दिल्ली और अजमेर को भौंह के संकेत से नचानेवाले चौहान को ये शब्द भी सुनने पड़े ! यदि दिल्ली में ये शब्द मेरे कानों में पड़ते, तो·· तो···हाय, जबान लड़खड़ा रही है। बोला भी नहीं जाता ।

चन्द—(दुःख से) आह, आज, महाराज पृथ्वीराज चौहान की यह दशा !

पृथ्वीराज—(अपने ही विचारों में) फिर सबने मिलकर मुझे जोर से पकड़ लिया ! मेरे हाथ-पैर बँधे थे । मैं बिल्कुल असहाय था । चन्द, उस समय, जीवन में पहली बार—केवल पहली बार—मैंने अपनी आँखों को आँसुओं से भरा पाया ।

चन्द—(करुणा से) महाराज, आपका गला सूख रहा है, पानी पी लीजिए ।

पृथ्वीराज—(चन्द की बात न सुनकर अपने ही विचारों में, मानो वह दृश्य उसकी आँखों में झूल रहा है।) दो गर्म सूजे मेरी आँखों के पास लाये गए। मुझे उनकी गर्मी धीरे-धीरे पास आती हुई जान पड़ी। उस समय मुझे याद आया—संयोगिता ने एक बार इसी प्रकार धीरे-धीरे अपने मुख को समीप लाते हुए इन्हीं आँखों का चुम्बन किया था। उस समय उन अधरों की मादकता मेरे पास इसी प्रकार धीरे-धीरे आती हुई जान पड़ी थी!

चन्द—(चंचल होकर) अब आगे मत कहिए, मैं नहीं सुन सकूँगा।

पृथ्वीराज—एक क्षण में उन्होंने गर्म सूजों से मेरी पलकों को छेद डाला, मेरी पुतलियों को जलाकर······

चन्द—(अधीन होकर)—अब न सुन सकूँगा, यह क्रूरतापूर्ण अत्याचार!

पृथ्वीराज—(शान्त होकर) अच्छा मत सुनो। पर इतना जान लो, जिन आँखों में संयोगिता की मूर्ति अंकित थी, वे आँखें अब नहीं रहीं। जिन अतृप्त आँखों में सौन्दर्य-सुधा पान की मादकता थी, वे आँखें अब नहीं रहीं।

चन्द—(दृढ़ता से) और, जिन आँखों ने क्रूर दृष्टि से कितने ही राजाओं को निस्तेज कर दिया, जिन आँखों ने रक्तवर्ण होकर रणक्षेत्र में लोहा बरसा दिया, वे आँखें?

पृथ्वीराज—वे आँखें? उफ्! वे आँखें तो जयचन्द के विश्वास-घात की आग में जल गईं। कवि, क्या रेबा-तट के सत्ताइसवें समयों की याद दिलाना चाहते हो? इस समय मेरे सामने तुम्हारा 'रासो' कवि की कल्पना का साधारण अभ्यास-मात्र है। अब तो यह शरीर पृथ्वीराज चौहान नहीं रह गया।

चन्द—महाराज······

पृथ्वीराज—बार-बार मुझे महाराज क्यों कह रहे हो? मैं एक कैदी हूँ।

[साँकल बज उठती है।]

चन्द—पर मेरे लिए नहीं। फिर आपका शरीर कैदी है। आत्मा? मुझे विश्वास है, आपकी आत्मा कैदी नहीं हो सकती। आप वही पृथ्वीराज चौहान हैं। उस समय आप भारत में थे, इस समय यहाँ। शेर पिंजड़े में बन्द रहने पर भी शेर ही कहलाता है। (गर्व की मुद्रा)

पृथ्वीराज—यदि शेर को शेर ही रखना चाहते हो, तो चन्द, कहाँ है तुम्हारी तलवार? फाड़ दो मेरा यह वक्षस्थल। पृथ्वीराज के गौरव से गिरे हुए इस प्राणी को प्राण की आवश्यकता नहीं। इस जीवन का एक-एक क्षण तुम्हारी तलवार को धार से बहुत पैना है। (साँकल का शब्द) लाओ अपनी तलवार।

चन्द—तलवार? वह तो गोरी के हुक्म से दरवाजे पर ही मेरे हाथों से ले ली गई। मुझसे कहा गया कि मैं उसे भीतर नहीं ले जा सकता। वह तो दरवाजे पर ही ले ली गई।

पृथ्वीराज—(दाँत पीसकर) ले ली गई? और हाथ? वे भी गोरी ने नहीं काट लिये? नीच! नारकी! (ठहरकर) चन्द, तुम प्राणहीन होकर मेरे पास आये हो। जानते हो, वीरों के प्राण का नाम है, तलवार!

चन्द—जानता हूँ, पर सुलतान का हुक्म।

पृथ्वीराज—सुलतान का हुक्म? गोरी का? और तुम उस हुक्म के आज्ञाकारी सेवक हो?

चन्द—(सँभलकर) किन्तु यह कटार (छिपी हुई कटार निकालकर) मैंने अपनी आत्मा की तरह छाती में छिपाकर रखी है। मैं इससे अपना काम कर सकता हूँ। (तनकर खड़ा हो जाता है।)

पृथ्वीराज—(बड़ी प्रसन्नता से) मेरे अच्छे चन्द, महाकवि, मित्र, प्यारे! आओ! मेरे जीवन की श्मशान के समान भयानक आग शान्त कर दो। लाओ, तुम्हारा माथा चूमूँ। हाय! मैं देख भी नहीं सकता, तुम्हारा माथा कहाँ है?

चन्द—महाराज! विचलित न होइए। मैं चौहान को इस दैन्यावस्था में नहीं देख सकता। मैं अभी मृत्यु······।

पृथ्वीराज—(बात काटकर) हाँ, देर न करो। देर न करो। मेरे चन्द, महाकवि, मित्र……।

चन्द—महाराज! मैं देर न करूँगा। यह छुरी छाती में घुसकर शीघ्र ही इस दुःख से मुक्त कर देगी। लीजिए, चूमता हूँ यह कटार। (कटार चूमता है) लाइए, अन्तिम बार आपके चरण स्पर्श कर लूँ। (चरण स्पर्श करता है) प्रणाम! मैं आप पर नहीं, अपने ही शरीर पर आघात करूँगा, क्योंकि मैं आपकी यह दशा नहीं देख सकता। (कटार ऊपर तानता है।)

पृथ्वीराज—(विचलित होकर) नहीं, नहीं। (जंजीर बज उठती है।) मेरे चन्द, यह नहीं हो………

[चन्द आत्मघात करना ही चाहता है कि पीछे से मुहम्मद गोरी निकल कर हाथ रोक कर, कटार छीन लेता है। गोरी पैंतीस वर्ष का युवक है। शरीर गठा हुआ। मूँछें तनी हुई। वह फौजी वेष में है। कमर में तलवार है।]

गोरी—(हँसकर) हँअ, सरदार! जिन्दगी इतनी नाचीज है? यह दुनिया इसी तरह चलती है और चलती रहेगी। तुम इतने मायूस क्यों होते हो? और भोले सरदार! क्या तुम जानते हो कि मेरे घर में क्या हो रहा है? इसका पता मुझे नहीं? गोर का सुलतान दीवारों में अपनी दृष्टि रखता है।

[चन्द मलिन दृष्टि से गोरी को देखता है।]

गोरी—(उत्साह से) पर वाह! तुम कितने वफादार हो! अपने मालिक की यह हालत न देख सकने वाले सरदार! अपनी वफादारी का इनाम माँगो!

[चन्द चुप रहता है।]

गोरी—कुछ नहीं? बोलो! अभी तो बोल रहे थे, अन्धे का पैर चूम रहे थे। उसकी आँखें नहीं चूमते? अहा, कैसी खूबसूरत हैं!

[व्यंग्य दृष्टि]

चन्द—खूबसूरत? उस शेर की आँखें अब उसके दिल में हैं।

गोरी – दिल में ? बहुत अच्छा ! यह शेर शायद तुम्हें उन्हीं आंखों से देख रहा है ? पृथ्वीराज तू मुझे किन आँखों से देख रहा है ?

पृथ्वीराज—(स्थिर भाव से) गोरी, तू देखने के लायक भी नहीं। अपनी इन अन्धी आँखों से अगर मैं देख सकता, तो भी मैं तुझे देखना पसन्द नहीं करता। अच्छा हुआ तूने इनका उजाला ले लिया। (ठहरकर) मैं तुझे क्या देखूँ ? तू भूल गया, उस बार मेरे तीरों से तेरी टोपी उड़ी थी। उस वक्त मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था। जब तू मेरे सामने से भागा था, तब मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था। तू भूल गया ? मुझे दुःख है कि सरदारों के कहने में आकर मैंने तेरा पीछा नहीं किया। मेरे तीर तेरे शरीर को न भेद सके—(निराशा)

गोरी—(लापरवाही से) खैर तो तीर न सही, मेरे मामूली सूजे तेरी आँखों को वेध सके। एक बात है, पर तेरे तीर……

चन्द—(बीच ही में) सुल्तान पृथ्वीराज के तीर—पृथ्वीराज आवाज पर तीर मारता है।

गोरी—(आश्चर्य से) आवाज पर ! मारता होगा, पर अब तो वह अन्धा है।

चन्द – सुल्तान, आवाज पर तीर मारने के लिए आँख की जरूरत नहीं होती।

गोरी – सच ? (आश्चर्य प्रकट करता है।)

चन्द—बिल्कुल सच। कल अपने अन्धे वीर का यही तमाशा देखिएगा ! यही मेरा इनाम समझें।

गोरी—(पृथ्वीराज की ओर देखकर) शाबाश कैदी, (चन्द से) अच्छा चन्द ! कल तुम्हारी खातिर इस अन्धे की तीरन्दाजी भी देख लूँगा। अच्छा अब देर हो रही है। तुम मेरे साथ चल सकते हो। खुदकुशी पर तुमसे एक कहानी कहनी है। कैदी से मिलने का वक्त अब पूरा हो गया; अब एक मिनट भी नहीं।

चन्द—यह बतलाना तो सिपाही का काम है, आपका नहीं। आप तो सुल्तान हैं।

गोरी—तुम हमेशा मुझे सुलतान के बजाय सिपाही ही समझो, सिर्फ सिपाही। (**दृढ़ता से खड़ा होता है।**)

चन्द—(पृथ्वीराज से) अच्छा तो अब चलता हूँ। प्रणाम महाराज पृथ्वीराज! (**प्रणाम करता है**)

गोरी—(व्यंग्य से) महाराज ('महा' पर जोर देकर) पृथ्वीराज! हा हा हा! (अट्टहास करता है)। (जोर से) अख्तर!

[**सिपाही का प्रवेश। पूरी वर्दी में तीस वर्ष का जवान ज्ञात होता है। मुस्तैदी से प्रवेश, आकर सलाम करता है।**]

गोरी—महाराज ('महा' पर जोर देकर) पृथ्वीराज की आँखों में आज नीबू और मिर्च पड़ेगा। रात के ग्यारह बजे। कितने बजे?

अख्तर—ग्यारह बजे।

गोरी—क्या?

अख्तर—नीबू और मिर्च।

गोरी—हाँ, नीबू और मिर्च पड़ेगा, समझे?

पृथ्वीराज—(दृढ़ता से उसी स्वर में, नीबू के रस में नमक मिलाना होगा, समझे?

गोरी—(मुस्कराकर सिपाही से) अच्छा इसकी मुराद भी पूरी करो। **(पृथ्वीराज से)** कैदी! कल सुबह मिलूँगा? रात को अपनी आँखों में नमक-मिर्च डालकर आराम से सोना। (**तन कर खड़ा होता है।**)

पृथ्वीराज—बहुत अच्छा! गोरी, मुझसे सलाम करके जाना। मैं बादशाह हूँ।

गोरी--(**व्यंग्य से मुस्कराकर**) बहुत अच्छा बादशाह, सलाम!

[**चन्द को साथ लेकर गोरी का गर्व से प्रस्थान। पृथ्वीराज स्थिरभाव से बैठा रहता है।**]

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. प्रस्तुत नाटक के आधार पर पृथ्वीराज और गोरी के चरित्रों की तुलना कीजिए।

२. इस एकांकी के आधार पर यह सिद्ध कीजिए कि चन्द स्वामिभक्त था ।
३. गोरी ने पृथ्वीराज की आँखें क्यों फोड़ीं ? इस घटना से उस काल की राजनीतिक परिस्थिति पर क्या प्रकाश पड़ता है ?
४. यह एकांकी केवल पढ़ा जा सकता है या खेला भी जा सकता है ? खेले और पढ़े जाने वाले नाटकों की विशेषताएँ बताइए ।
५. गोरी ने पृथ्वीराज के साथ उचित व्यवहार किया या अनुचित ? आपके विचार में शत्रुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और क्यों ?

: १४ :

सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन

[प्रेमनारायण टंडन]

डॉ० प्रेमनारायण टंडन लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त आपने 'हिन्दी सेवी संसार' और 'ब्रजभाषा सूर कोश' की भी रचना की है।

प्रस्तुत पाठ में चन्द्रशेखर वेंकट रमन की जीवनी के द्वारा विद्यार्थियों को यह सिखलाया गया है कि श्रम और लगन के बल पर कोई वस्तु मनुष्य के लिये असाध्य नहीं होती।

वर्तमान युग विज्ञान का है। आज संसार में उन्हीं देशों का मान है, जिन्होंने विज्ञान में उन्नति की है। भारत इस क्षेत्र में पश्चिम के देशों से पिछड़ा माना जाता है। फिर भी भारत के कुछ सपूतों ने ऐसी नई बातों की खोज की है कि संसार के वैज्ञानिक भी चकित रह गए हैं। इन भारतीयों ने दूसरे देशों के सामने भारत का मान बढ़ाया है। इन्होंने सिद्ध कर दिया है कि प्रयत्न करने पर भारतवासी इस दिशा में भी दूसरे देशों के वैज्ञानिकों से आगे बढ़ सकते हैं। भारत के जो महापुरुष अपनी नई-नई खोजों के कारण संसार में अमर हुए हैं, उनमें सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन का नाम बहुत आदर से लिया जाता है।

दक्षिण भारत में त्रिचनापल्ली नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। १७ नवम्बर, १८८८ को श्री रमन का जन्म यहीं हुआ था। इनके पिता पंडित चन्द्रशेखर अय्यर की भौतिक विज्ञान में विशेष रुचि थी। इस विषय के वे विद्वान थे। रमन के जन्म के पश्चात् वे विजगापट्टम् के हिन्दू कालेज में भौतिक विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए। इसलिए बालक रमन की शिक्षा का प्रबन्ध भी इसी स्थान में हुआ। बारह वर्ष

की छोटी आयु में मैट्रिक और दो वर्ष बाद एफ० ए० की परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी में पास की। इस समय तक पिताजी के कारण बालक रमन की रुचि भी भौतिक विज्ञान में हो गई थी। पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त विज्ञान के अनेक ग्रन्थ उन्होंने पढ़ डाले थे। इस छोटी आयु के बालक की योग्यता देखकर अध्यापक चकित थे। उन्हें विश्वास हो गया कि यह विद्यार्थी आगे चलकर इस क्षेत्र में बहुत नाम कमायेगा। इसलिए समय-समय पर वे रमन का उत्साह बढ़ाया करते थे। अपने अंग्रेजी के अध्यापक की देख-रेख में उन्होंने इस भाषा में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। आगे चलकर इससे रमन को विज्ञान के क्षेत्र में काम करने में बहुत सहायता मिली।

सोलह वर्ष की अवस्था में रमन ने बी० ए० और उसके पश्चात् भौतिक विज्ञान में एम० ए० किया। अब तक रमन की प्रतिभा से विश्वविद्यालय के केवल अध्यापक ही परिचित थे। इन परीक्षाओं में उन्होंने इतने अच्छे अंक पाये कि प्रान्त के अनेक आचार्यों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो गया। अच्छे अंक पाने के कारण उनको कई पदक और पुरस्कार भी मिले लेकिन उनकी सबसे बड़ी सफलता यह थी कि एम० ए० पास करने के पूर्व ही एक ऐसी पत्रिका में उनके दो लेख छपे जो लन्दन से प्रकाशित होती थी। विज्ञान के अध्यापक उस पत्रिका में छपे लेखों को चाव से पढ़ते थे। उसमें लेख छपाने का सौभाग्य कम ही लोगों को प्राप्त होता था। उन लेखों के छपने के बाद श्री वेंकट रमन का बहुत आत्मविश्वास बढ़ गया और वे पूरी लगन से काम करने लगे।

विद्यार्थी जीवन की उनकी दूसरी सफलता इससे भी बढ़कर थी। कालेज और विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में नये-नये प्रयोग करने की रुचि उनमें शुरू से ही थी। धीरे-धीरे उन्हें तरह-तरह के प्रयोगों में बहुत आनन्द आने लगा और हर प्रयोग का ठीक फल देखकर उनका उत्साह भी बढ़ा। उन्हीं दिनों रमन ने दो ऐसे प्रयोग किये जो अच्छे-अच्छे वैज्ञानिकों को भी चकित कर देने वाले थे। इस सफलता पर उनके

अध्यापकों ने तो उन्हें बधाई दी ही, देश-विदेश के अन्य विद्वानों ने भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की।

विज्ञान के प्रति श्री वेंकट रमन की इतनी रुचि देखकर विश्व-विद्यालय के अधिकारियों ने उनको अच्छी-से-अच्छी ऊँची शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने प्रिय विद्यार्थी की सफलताओं की प्रशंसा करते हुए भारत सरकार को लिखा कि ऐसे होनहार युवक को इंगलिस्तान भेजा जाना चाहिए और इसके लिए सरकार उसको छात्र-वृत्ति भी दे। विद्यालय के अधिकारियों से भारत सरकार सहमत हो गई। श्री वेंकट रमन को इस सूचना से बड़ा सन्तोष मिला। युवक तो कल्पना प्रिय होते ही हैं। इस होनहार वैज्ञानिक ने भी भविष्य के लिए बहुत-सी बातें अपने मन में सोच लीं। परन्तु हर काम अपने समय से होता है। श्री वेंकट रमन के भाग्य में अभी इंगलिस्तान जाना नहीं बदा था। डाक्टरों ने परीक्षा करके बताया कि उनका स्वास्थ्य समुद्री यात्रा के योग्य नहीं है। आज की तरह सुखदाई समुद्री यात्रा उन दिनों नहीं होती थी। विवश होकर विलायत जाने का विचार रमन को छोड़ देना पड़ा।

होनहार वास्तव में उसे समझना चाहिए जो कठिन-से-कठिन और विरोधी परिस्थितियों का सामना करने को तैयार रहे। ऐसे युवक जीवन में कभी निराश नहीं होते और भला बुरा कोई भी अवसर उनको नया काम करने की प्रेरणा दे जाता है। विलायत न जा सकने पर रमन ने कोई ऊँचा सरकारी पद पाने की ओर ध्यान दिया। अंग्रेजी सरकार ऊँचे-ऊँचे पद उन्हीं भारतीयों को देती थी जो विलायत में शिक्षा पाते थे। केवल 'अर्थ विभाग' के कुछ पद ऐसे थे जिनके लिये विलायती शिक्षा की जरूरत नहीं थी। परन्तु इनके लिये साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि विषयों में एक प्रतियोगिता परीक्षा होती थी। रमन की रुचि शुरू से ही विज्ञान की ओर थी और अन्य विषयों का उन्हें बहुत साधारण ज्ञान था। कोई दूसरा युवक होता तो ऐसी दशा में हिम्मत हार जाता; परन्तु रमन दूसरी धातु के बने थे।

उन्होंने एक बार परीक्षा देने का निश्चय किया और नये विषयों के अध्ययन में जुट गए।

ठीक समय पर प्रतियोगिता-परीक्षा हुई। रमन उसमें पूरी तैयारी के साथ बैठे। कुछ समय बाद परीक्षा-फल प्रकाशित हुआ। लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि रमन ने प्रथम श्रेणी में अच्छा पद प्राप्त किया है। सरकार भी इस होनहार युवक की प्रतिभा पर मुग्ध हो गई। शीघ्र ही ये अर्थ-विभाग में 'डिप्टी एकाउन्टेंट जनरल' के पद पर नियुक्त कर दिये गए। इस समय उनकी अवस्था सिर्फ बीस वर्ष की थी। दस वर्ष तक उन्होंने बड़ी योग्यता और परिश्रम से अर्थ-विभाग में काम किया। सरकारी अधिकारी उनके कार्य से बहुत सन्तुष्ट रहे। उन्होंने अन्य उच्च पदों के लिए इनके नाम की सिफारिश की। सरकार ने इनको ऊँचा पद दिया तथा रमन ने अपने कार्य से सबको सन्तुष्ट रखा।

अर्थ-विभाग में काम करते हुए भी रमन ने विज्ञान से बराबर सम्बन्ध बनाये रखा। दफ्तर के काम के बाद जो कुछ समय इनके पास बचता था, उसे ये विज्ञान के अध्ययन में ही लगाते थे। यह विषय ऐसा है कि इसमें प्रति दिन नई-नई बातों की खोज होती रहती है, इसलिए कुशल वैज्ञानिक बनने की चाह रखने वाले को उनकी पूरी जानकारी रखनी होती है। यह तभी सम्भव है जबकि नियमित रूप से उसका अध्ययन किया जाए। रमन यह बात भली-भाँति समझते थे और वैसा ही करते भी रहते थे। कलकत्ता में एक प्रसिद्ध विज्ञान-परिषद् थी—'इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टीवेशन ऑव सायन्स'। अर्थ-विभाग में नियुक्ति होने के कुछ समय बाद ही वे इसके सदस्य हो गए। इस संस्था को एक ऐसे आदमी की जरूरत थी जिसमें विज्ञान के क्षेत्र में काम करने की सच्ची लगन हो। सौभाग्य से रमन ऐसे ही आदमी थे। उधर, वैज्ञानिक का काम बिना प्रयोगों के नहीं चलता। और रमन को एक ऐसी प्रयोगशाला की आवश्यकता थी जहाँ वे स्वतन्त्र रूप से प्रयोग कर सकें। उनके सौभाग्य से इस संस्था के पास अच्छी प्रयोगशाला थी। कहना चाहिए कि केवल इन दोनों—संस्था और रमन—के ही नहीं,

सारे विज्ञान-जगत् और हमारे देश के सौभाग्य से इस युवक वैज्ञानिक का सम्बन्ध इस परिषद् से स्थापित हुआ और लगभग बीस वर्ष तक बना रहा।

जिस दूसरी वैज्ञानिक संस्था से रमन का सम्बन्ध हुआ वह थी कलकत्ता का 'सायन्स कालेज'। इसकी स्थापना सन् १९१४ में हुई थी। इस शिक्षा-संस्था को एक ऐसे वैज्ञानिक की आवश्यकता थी जो अपने कार्यों से उसका नाम विज्ञान की शिक्षा-संस्थाओं में ऊँचा कर सके। रमन भी अब अपना पूरा समय विज्ञान के प्रयोगों में ही लगाना चाहते थे। उन्होंने इस्तीफा देकर 'सायन्स कालेज' में विज्ञान के आचार्य का पद स्वीकार कर लिया। संसार में वे ही लोग उन्नति कर पाते हैं जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए बड़े से बड़ा त्याग कर सकें। रमन का यह त्याग भी साधारण नहीं था। रुपये-पैसे के सुख का जरा भी मोह रखने वाला व्यक्ति अर्थ-विभाग के ऊँचे सरकारी पद को ठुकराकर एक नये कालेज में अध्यापक बनना कभी स्वीकार नहीं कर सकता। वास्तव में रमन को अपने कार्य में सफलता मिली, उसका एक कारण उनका यह त्याग भी है। इससे सिद्ध होता है कि उनकी दृष्टि में विद्या के सामने धन का कोई मूल्य कभी नहीं रहा। ऐसे ही विद्वानों के सामने धनवानों का मस्तक बराबर झुकता रहा है। 'सायन्स कालेज' के द्वारा रमन का सम्बन्ध कलकत्ता विश्वविद्यालय से लगभग पन्द्रह वर्ष तक बना रहा।

कलकत्ता की विज्ञान-परिषद् की ओर से एक पत्रिका छपती थी जिसमें उसके कार्यों की चर्चा रहती थी। वहाँ की प्रयोगशाला में जो प्रयोग और अनुसन्धान होते थे, इसी पत्रिका के द्वारा उनको विज्ञान-जगत् तक पहुँचाया जाता था। देश-विदेश के अनेक वैज्ञानिकों के पास यह पत्रिका पहुँचती थी। रमन के प्रयोगों का विवरण इसमें छपने लगा, तब उनका खूब नाम हुआ और उनका परिचय अच्छे-अच्छे वैज्ञानिकों से हो गया। 'सायन्स कालेज' में आने के बाद ही रमन के लेख दूसरी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपने लगे। इस तरह धीरे-धीरे रमन की

गिनती भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में की जाने लगी और लोगों को आशा हो गई कि किसी दिन विज्ञान के क्षेत्र में ये ऐसा काम करेंगे कि हमारे देश का मस्तक ऊँचा होगा ।

प्रत्येक वैज्ञानिक रुचि तो सभी नई बातों में लेता है, लेकिन उसके प्रिय विषय एक-दो होते हैं । रमन ने भी अनुसन्धान तो कई किये, लेकिन प्रकाश और रंग—दो ही विषयों के सम्बन्ध में नई जानकारी प्राप्त करने में उनका मन शुरू से लगता रहा । आकाश के रंग-बिरंगे बादल, इन्द्रधनुष आदि किस प्रकार बनते-बिगड़ते हैं और द्रव तथा ठोस पदार्थों में प्रकाश का प्रवेश किस प्रकार होता है—ऐसी बातों के सम्बन्ध में उन्होंने जो खोज की वह उनके कार्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । आकाश के रंग-परिवर्तन-सम्बन्धी उनके अनुसन्धान को 'रमन-प्रभाव' का नाम दिया गया है । सन् १९३० का भौतिक विज्ञान का 'नोबुल पुरस्कार' उनको इसी अनुसन्धान पर दिया गया था। इस सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार ने रमन को भारत के नहीं, संसार के प्रधान वैज्ञानिकों में प्रसिद्ध कर दिया ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में पन्द्रह-सोलह वर्ष कार्य करने के पश्चात् रमन को पूर्ण स्वतन्त्रता से काम करने की आवश्यकता हुई । इस समय तक वे नोबुल पुरस्कार भी प्राप्त कर चुके थे । इसलिए सन् १९३८ में वहाँ से अवकाश लेकर वे बंगलौर की प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑव सायन्स' के डायरेक्टर बने और पाँच वर्ष तक इसी पद पर काम करते रहे । इसके पश्चात् भी आपका निकट सम्बन्ध इस संस्था से बना हुआ है । वहाँ का बहुत-सा वैज्ञानिक अनुसन्धान-कार्य आपकी देख-रेख में होता है । इस प्रकार आज वे भारत के नवयुवक वैज्ञानिकों के निर्देशक हैं । वे स्वयं जीवन-भर विज्ञान की साधना में लगे रहे और आज अपने निकट आनेवाले प्रत्येक प्रतिभाशाली युवक को उत्साहित करने वाले प्रेरक हैं । जीवन-भर उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में नई बातों की खोज की और आज भी वे इसी कार्य को आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं ।

मनुष्य की मनुष्यता इस बात में है कि वह दूसरों के गुणों का आदर करे, दूसरे की सेवाओं की प्रशंसा करे, दूसरे के उपकारों को कृतज्ञता के साथ स्वीकार करे और दूसरों को ज्ञान विकास करते देखकर उनका सम्मान-सत्कार करे। जिन लोगों के कामों का लाभ सिर्फ उनके देशवासी ही उठाते हैं उनका आदर-सत्कार अपने देश में ही होता है; लेकिन विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में जो काम होता है, उससे आज सारा संसार लाभ उठाता है। इसलिए इस दिशा में महत्वपूर्ण मौलिक काम जिन्होंने किया है, संसार ने उनकी पूजा की है। रमन भी ऐसे ही व्यक्ति हैं। उन्होंने विज्ञान की खोज को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया। इसलिए संसार के बड़े-बड़े देशों ने अपने-अपने ढंग पर उनका सम्मान करके उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

१९२२ में ऑक्सफोर्ड में ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों की एक कांग्रेस हुई। कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से रमन इसमें सम्मिलित हुए। एक प्रकार से यहीं से आपके सम्मान का श्रीगणेश होता है। दो वर्ष बाद लन्दन की रायल सोसाइटी ने आपको 'फेलो' चुनकर सम्मानित किया। इसी वर्ष आप 'इंडियन मैथेमेटिकल सोसाइटी' के भी 'फेलो' बनाये गए थे। अब भारत सरकार का ध्यान भी आपकी ओर गया और उसने आपको 'सर' की उपाधि प्रदान की। १९२८ में इटली की विज्ञान-परिषद ने और १९३० में लन्दन की रायल सोसाइटी ने आपको एक-एक पदक प्रदान किया। भारत तथा बाहर के अनेक प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों ने भी अपनी-अपनी उपाधियाँ देकर आपकी वैज्ञानिक सेवाओं को सम्मानित किया।

किसी भी क्षेत्र में सफलता पानेवालों की जीवनी हम इसीलिए पढ़ते हैं कि हमें आगे बढ़ने का उत्साह मिले और वह गुर या रहस्य मालूम हो सके जिससे हम मनचाही सफलता पा सकें। श्री रमन से भी हमें ये दोनों बातें सीखनी चाहिए। मध्य श्रेणी के एक परिवार में जन्म लेकर भी विज्ञान के क्षेत्र में नये काम करके संसार को चकित

कर देना निस्सन्देह प्रत्येक नवयुवक को उत्साह और प्रेरणा दे सकता है परन्तु उनकी तरह सफलता वे ही प्राप्त कर सकेंगे जो निस्वार्थ भाव से और लगन के साथ एक ही प्रिय विषय के अध्ययन में और उस पर अधिकार प्राप्त करने में जुटे रहेंगे। परिस्थिति उसके मार्ग में रुकावट डालेगी, लेकिन जो उसके सामने झुकने का नाम न लेंगे, वे ही सफलता पाने की आशा कर सकते हैं। रमन की रुचि विज्ञान में थी, लेकिन परिस्थिति ने उन्हें पहुँचाया अर्थ-विभाग में। कहाँ सरस्वती की निरन्तर साधना की इच्छा और कहाँ सरकारी नौकरी और वह भी बहुत झंझटों की ! परन्तु निरुत्साहित न होकर रमन ने धीरे-धीरे अपने विज्ञान-प्रेम को सुदृढ़ बनाया और एक दिन नौकरी को ठुकरा दिया। अब वे परिस्थिति से ऊपर उठ गए। इसी प्रकार लगन और विश्वास से काम करने पर हम भी मनचाही सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. रमन के जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

२. जीवन में लगन और साधना के महत्त्व पर एक निबन्ध लिखिए।

३. क्या यह सच है कि गुनी लोग प्रतिकूल परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बना लेते हैं ?

४. रमन के आविष्कारों के बारे में आप क्या जानते हैं ?

५. साहित्य, कला और विज्ञान में कौन श्रेष्ठ है और क्यों ?

: १५ :

ताई

[विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक']

कौशिकजी का हिन्दी कहानीकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने लगभग ३०० कहानियाँ लिखी हैं। 'चित्रशाला', 'गल्प मन्दिर', 'प्रेम-प्रतिमा' इत्यादि आपके कहानी-संग्रह हैं। आपकी अधिकतर कहानियाँ घटना-प्रधान होती हैं। घटना के साथ-साथ चरित्र-चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी सुन्दर बन पड़ता है।

'ताई' आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। सन्तानहीन नारी के हृदय में किस प्रकार मातृ-सुलभ कोमलता तथा क्रूरता और कठोरता साथ-साथ निवास करती हैं इसका मर्मस्पर्शी वर्णन यहाँ किया गया है। नारी के अतिरिक्त इसमें शिशुता का भी सुन्दर चित्र दिया गया है। ताई के मानसिक संघर्ष को बड़े स्वाभाविक तथा प्रभावपूर्ण ढंग से पेश किया गया है। आपकी भाषा सरल, स्वाभाविक तथा मुहावरेदार होती है।

"ताऊजी, हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे ?" कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा, ला देंगे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी का ?"

बालक बोला—"उसमें बैठ के बली दूल जाएँगे। हम बी जएँगे, चुन्नी को बी ले जाएँगे। बाबूजी को नहीं ले जाएँगे। हमें लेलगाड़ी नहीं ला देते। ताऊजी, तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जाएँगे।"

बाबू—"और किसे ले जाएगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ, और किसी को नहीं ले जाएँगे ।"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धाङ्गिनी बैठी थीं । बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जाएगा ?"

बालक कुछ देर अपनी ताई की ओर देखता रहा । ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं । बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा । अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जाएँगे ।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजी को ले जा ! मेरे ऊपर दया रख !"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही । बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया । बाबू साहब ने फिर पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जाएगा ?"

बालक—"ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलतीं ।"

बाबू—"जो प्यार करें तो ले जाएगा ?"

बालक को इसमें कुछ सन्देह था । ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी । इससे बालक मौन रहा ।

बाबू साहब ने फिर पूछा—"क्यों रे, बोलता नहीं ! ताई प्यार करें तो रेल पर बिठाकर ले जाएगा ?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा ।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो, इसे प्यार कर लो तो यह तुम्हें भी ले जाएगा ।"

परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी । वह तुनककर बोलीं—"तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है ।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया । बच्चे को

उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"प्यार नहीं करोगी तो फिर रेल में नहीं बिठाएगा। – क्यों रे मनोहर ?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में तो चोट नहीं लगी, पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया। चुमकार-पुचकारकर चुप किया और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है ? बच्चे को ढकेल दिया ! जो उसके चोट लग जाती तो ?"

रामेश्वरी मुँह मटकाकर बोली—"लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे ? आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं !"

बाबू साहब कुढ़कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं ?"

रामेश्वरी—"और नहीं किसे कहते हैं ? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुःख-सुख सूझता ही नहीं। न-जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की परवाह नहीं, अपनी चुहल से काम है !"

बाबू "बच्चों की प्यारी प्यारी बातें सुनकर जी चाहे जैसा ही हो प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है !"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और, होने को होता भी है; मगर वैसा बच्चा भी तो हो ! पराये धन से भी कहीं घर भरता है ?"

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे !"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोली—"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो, पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव आया। उन्होंने कहा—"पूजा-पाठ, व्रत, ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा यह अटल विश्वास है।"

श्रीमतीजी कुछ-कुछ रुआँसे स्वर में बोलीं—इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जाएँ, तो काम कैसे चले। सब विश्वास ही पर बैठे रहें, तो आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं। अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गए।

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उसका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है और छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तानें हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उसकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तानहीनता कभी खटकती नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे रामजीदास से इतने हिले-मिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तानहीनता का

बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सन्तान ही की सोच में घुला करती है। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उसकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थी। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोली—"तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम दोनों के जन्मपत्र में सन्तान का जोग है और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताये थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना-न-होना तो भगवान के अधीन है।"

बाबू साहब हँसकर बोले—"तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी···क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बात पर विश्वास करती हो, जो दुनिया-भर के झूठे और धूर्त हैं! ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनककर बोली—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पण्डित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते नहीं हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है तो वे भी झूठे हैं। अँगरेजी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के जमाने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बताते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती नहीं, अपनी ही औटे जाती

हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, एक-दो छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है।"

रामेश्वरी—"हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो! अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती ?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो ? परन्तु किया क्या जाए ? जब नहीं है, और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती वही भाई की सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उसकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाए।"

रामेश्वरी कुढ़कर बोली—"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ! इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा ?"

बाबू साहब हँसकर बोले—"अरे, तुम भी कहाँ की पोच बातें लायीं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है और सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके ? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गए हैं, उन सबका नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है ? सच पूछो, तो सन्तान से जितनी नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे

शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे ? उनके सन्तान कहाँ है ? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती।"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम। यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाए, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति हो ही जाती है ? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है ! ये जितने पुत्रवाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी ?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोली—"अब तुमसे कौन बकवाद करे ! तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

× × ×

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काम में न आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आनेवाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है, इसलिए कि वह अपनी चीज है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उसका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उसके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं; परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उसका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींच-कर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लानेवाला कोई नहीं। इसी लिए उसका हृदय उन बच्चों की ओर खिचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उसके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उसके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थी कि उसके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उसके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थी। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थी! दोनों बच्चे छत पर दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेल को देख रही थी। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हें-नन्हें मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उसके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़ कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया, और वह भी उसी की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गई। उसने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उसने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उसकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी

समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।"—कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों में मग्न होते देखकर उसकी भौहें तन गईं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये और मुस्कराकर बोले—"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं! इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पति की यह बात बुरी लगी। उसे अपनी कमजोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उसकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उसके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसलिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उसने कुढ़कर मन में कहा—'इन्हें मौत भी नहीं आती, मर जाएँ, पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।'

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की

आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोली—"मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्ही को मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आके घुसते हैं। एक घर में रहने में कभी-कभी हँसना बोलना ही पड़ता है। अभी परसों जरा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं, न यों चैन, न वों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े इत्यादि शब्द निकाले, तो अच्छा न होगा! तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं!"

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों द्वारा निकालने लगी।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वह पति की नजर से गिरती जा रही है, तब उसके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उसने सोचा—'पराये बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब-कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। वे पैदा होते ही क्यों न मर गए! न ये होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के चिराग जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर

रखा है।"

× × ×

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी थी। उसके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उसके विचार स्वयं उसी को कष्टदायक प्रतीत होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए टहलने लगी।

वह टहल ही रही थी कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उसकी भृकुटी चढ़ गई, और वह छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गई।

सन्ध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आए! देर तक पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया, और उसकी टाँगों में लिपट कर बोला—"ताई, हमें पतंग मँगा दो।"

रामेश्वरी ने झिड़ककर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण-स्वर में कहा—"ताई, पतंग मँगा दो; हम भी उड़ायेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रही। फिर उसने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—'यदि यह मेरा पुत्र होता तो आज मुझसे बढ़कर भाग्यवान् दूसरी स्त्री संसार में न होती। निगोड़-मारा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है!

यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लें।'

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरनेवाली थी कि इतने में मनोहर उसे मौन देखकर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी, तो ताऊजी से कहकर तुम्हें पिटवाएँगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़ककर बोली—"जा, कह दे अपने ताऊजी से। देखूँ वह मेरा क्या कर लेंगे।"

मनोहर भयभीत होकर उसके पास से हट आया और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी छत की ओर आई और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थी, केवल वहीं पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थी! मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रही। मनोहर उसके पास होकर छज्जे पर चला गया और उससे दो फुट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आँगन में, जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुंडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे, आँगन में झाँका, और पतंग को आँगन में गिरते देख, वह प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़कर लटक गया, और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया, "ताई!" रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। उसके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट

जायेगा। वही सोचकर वह क्षण के लिए रुकी। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—"अरी ताई!" रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा देखकर मुँह को आ गया। उसने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उसका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई! वह आ गिरा। रामेश्वरी भी चीख मारकर छज्जे पर से गिर पड़ी।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रही। कभी-कभी वह जोर से चिल्ला उठती, और कहती—"देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो!" कभी वह कहती—"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ; हाँ, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करती।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर लाने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उसने पूछा—"मनोहर कैसा है?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई, हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई। अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करती। और मनोहर तो अब उसका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उसे एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. ताई के हृदय-परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

२. मनुष्य में राक्षस के साथ देवता भी रहता है, क्या यह सत्य इस कहानी में उद्घाटित हुआ है और किस प्रकार?

३. ताई और रामजीदास के चरित्रों के मौलिक भेद पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

४. हिन्दी कहानी के विकास में कौशिकजी का स्थान निर्धारित कीजिए।

५. कौशिक जी की शैली की विशेषताएँ बताइए।

पद्य-खण्ड

: १६ :

एक बूँद

[अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

आधुनिक हिन्दी कविता में 'हरिऔध'जी की गणना प्रमुख कवियों में की जाती है। 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' आपके महाकाव्य हैं। 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' सरल और मुहावरेदार भाषा में काव्य-ग्रन्थ हैं। समय के साथ आप बदलते, पनपते, और विकसित होते रहे। आपका जन्म १८६५ में और मृत्यु १९४७ में हुई।

'एक बूँद' कविता में कवि यह बतलाता है कि प्रायः घर छोड़ते हुए मनुष्य को बड़ा कष्ट होता है, परन्तु कठिन परिस्थितियों का सामना किये बग़ैर कोई भी इन्सान बड़ा नहीं बन सकता।

यों निकलकर बादलों की गोद से,
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी।
सोचने फिर-फिर यही जी में लगी,
आह क्यों घर छोड़कर मैं यों कढ़ी।। १ ।।

दैव, मेरे भाग में क्या है बदा,
मैं बचूंगी या मिलूँगी धूल में।
या जलूँगी गिर अंगारे पर किसी,
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में।। २ ।।

वह गई उस काल एक ऐसी हवा,
वह समुन्दर ओर आई अनमनी।
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला,
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी।। ३ ।।

लोग यों ही हैं झिझकते सोचते,
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर।
किन्तु घर का छोड़ना अकसर उन्हें,
बूँद लौ कुछ और ही देता है कर ॥ ४ ॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. इस कविता से आपको कवि ने क्या सन्देश दिया है ?

: १७ :

पंचवटी में

[मैथिलीशरण गुप्त]

गुप्तजी का जन्म सन् १८८६ में और मृत्यु १९६३ में हुई । आप आधुनिक हिन्दी कविता के महाकवि माने जाते थे । 'भारत भारती', 'यशोधरा', 'साकेत', 'द्वापर', 'पंचवटी', 'जयभारत' आदि आपके कई प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं ।

प्रस्तुत काव्य-खण्ड में पंचवटी में राम और सीता के निवास का वर्णन है । सच्चे आर्यों द्वारा जंगल में भी मंगल सिद्ध होता है, वे प्रकृति से ऐसे हिल-मिल जाते हैं कि मानव, पशु, पक्षी तथा प्रकृति सब मिलकर स्वर्ग का-सा दृश्य खड़ा कर देते हैं ।

जो हो, जहाँ आर्य रहते हैं
वहीं राज वे करते हैं,
उनके शासन में वनचारी
सब स्वच्छन्द विहरते हैं ।
रखते हैं सयत्न हम पुर में
जिन्हें पींजरों में कर बन्द;
वे पशु-पक्षी भाभी से हैं
हिले यहाँ स्वयमपि, सानन्द !
करते हैं हम पतित जनों में
बहुधा पशुता का आरोप,
करता है पशुवर्ग किन्तु क्या
निज निःसर्ग-नियमों का लोप ?
मैं मनुष्यता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूँ,

किन्तु पतित को पशु कहना भी
कभी नहीं सह सकता हूँ।
आ-आकर विचित्र पशु-पक्षी
यहाँ बिताते दोपहरी,
भाभी भोजन देतीं उनको,
पंचवटी छाया गहरी।
चारु चपल बालक ज्यों मिलकर
माँ को घेर खिझाते हैं,
खेल-खिझाकर भी आर्या को
वे सब यहाँ रिझाते हैं!
गोदावरी नदी का तट वह
ताल दे रहा है अब भी,
चंचल जल कल-कल कर मानो
तान ले रहा है अब भी!
नाच रहे हैं अब भी पत्ते,
मन-से सुमन महकते हैं,
चन्द्र और नक्षत्र ललककर
लालच भरे लहकते हैं।
वैतालिक विहग भाभी के
सम्प्रति ध्यान लग्न-से हैं,
नये गान की रचना में वे
कवि-कुल-तुल्य मग्न-से हैं।
बीच-बीच में नर्तक केकी
मानो यह कह देता है—
मैं तो प्रस्तुत हूँ, देखें कल
कौन बड़ाई लेता है॥
आँखों के आगे हरियाली
रहती है हर घड़ी यहाँ,

जहाँ-तहाँ झाड़ी में झिरती
है झरनों की झड़ी यहाँ।
वन की एक-एक हिमकणिका
जैसी सरस और शुचि है,
क्या सौ-सौ नागरिक जनों की
वैसी विमल रम्य रुचि है?
मुनियों का सत्संग यहाँ है,
जिन्हें हुआ है तत्व-ज्ञान,
सुनने को मिलते हैं उनसे
नित्य नये अनुपम आख्यान।
जितने कष्ट-कंटकों में हैं
जिनका जीवन-सुमन खिला,
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही
यत्र, तत्र, सर्वत्र मिला॥
शुभ सिद्धान्त वाक्य पढ़ते हैं
शुक-सारी भी आश्रम के,
मुनिकन्याएँ यश गाती हैं
क्या ही पुण्य-पराक्रम के।
अहा! आर्य के विपिन-राज्य में
सुखपूर्वक सब जीते हैं,
सिंह और मृग एक घाट पर
आकर पानी पीते हैं॥
गुह, निषाद, शबरों तक का मन
रखते हैं प्रभु कानन में;
क्या ही सरल वचन रहते हैं
इनके भोले आनन में!
इन्हें समाज नीच कहता है,
पर हैं ये भी तो प्राणी,

इनमें भी मन और भाव हैं
किन्तु नहीं वैसी वाणी ।।
कभी विपिन में हमें व्यजन का
पड़ता नहीं प्रयोजन है,
निर्मल जल, मधु, कन्द, मूल, फल—
आयोजनमय भोजन है ।
मनःप्रासाद चाहिए केवल,
क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद ?
भाभी का आह्लाद अतुल है,
मझली माँ का विपुल विषाद !
अपने पौधों में जब भाभी
भर-भर पानी देतीं हैं,
खुरपी लेकर आप निराती
जब वे अपनी खेती हैं ।
पाती हैं तब कितना गौरव,
कितना सुख, कितना सन्तोष
स्वावलम्ब की एक झलक पर
न्योछावर कुबेर का कोष ।।
सांसारिकता में मिलती है
यहाँ निराली निस्पृहता,
अत्रि और अनसूया की-सी
होगी कहाँ पुण्य-गृहता ?
मानो है यह भुवन भिन्न ही,
कृत्रिमता का काम नहीं,
प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी,
कहीं विकृति का नाम नहीं ।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. मैथिलीशरण गुप्त के प्रकृति-चित्रण पर एक निबन्ध लिखिए ।

: १८ :

स्वदेश-प्रेम

[रामनरेश त्रिपाठी]

रामनरेश त्रिपाठी का जन्म सन् १८८६ में और मृत्यु १९६२ में हुई। 'पथिक', 'मिलन', 'स्वप्न' आपके प्रसिद्ध खण्ड-काव्य हैं। आपने रामचरित-मानस की टीका भी लिखी है। 'तुलसीदास और उनकी कविता' आपका आलोचनात्मक ग्रन्थ है। 'कविता-कौमुदी' के सात भागों में आपने हिन्दी, संस्कृत, बंगला, उर्दू इत्यादि भाषाओं की चुनी हुई कविताएँ संकलित की हैं।

आपकी कविता पर गांधीजी के विचारों की गहरी छाप है। इसमें राष्ट्रीयता और देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई है। अपनी संस्कृति और सभ्यता का अभिमान प्रत्येक युवक के रोम-रोम में व्याप्त होना चाहिए। 'स्वदेश-प्रेम' का यही सन्देश है।

अतुलनीय जिनके प्रताप का,
साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।
घूम-घूमकर देख चुका है,
जिसकी निर्मल कीर्ति निशाकर।
देख चुके हैं जिनका वैभव,
ये नभ के अनन्त तारागण।
अगणित बार सुन चुका है नभ,
जिनका विजय-घोष, रण-गर्जन। १।

शोभित है सर्वोच्च मुकुट से,
जिनके दिव्य देश का मस्तक।

गूँज रही हैं सकल दिशाएँ,
जिनके जय गीतों से अब तक।
जिनकी महिमा का है अविरल,
साक्षी सत्य-रूप हिम गिरिवर।
उतरा करते थे विमान-दल,
जिसके विस्तृत वक्षस्थल पर।२।

सागर निज छाती पर जिनके,
अगणित अर्णवपोत उठाकर,
पहुँचाया करता था प्रमुदित,
भूमण्डल के सकल तटों पर।
नदियाँ जिनकी यश धारा-सी,
बहती हैं अब भी निशि-वासर।
ढूँढ़ो उनके चरण-चिह्न भी,
पाओगे तुम इनके तट पर।३।

हे युवको! तुम उन्हीं पूर्वजों
के वंशज, उनके हो प्रतिनिधि।
तुम्हीं मान-रक्षक हो उनके
कीर्ति-तरंगिणियों के वारिधि।
रवि, शशि, उडुगन, गगन, दिशाएँ
हैं गिरि, नदी, मेदिनी जब तक।
निज पैतृक धन स्वतन्त्रता को,
क्या तुम तज सकते हो तब तक।४।

विषुवत रेखा का वासी जो
जीता है नित हाँफ-हाँफ कर।
रखता है अनुराग अलौकिक,
वह भी अपनी मातृभूमि पर।
ध्रुववासी जो हिम में, तम में
जी लेता है काँप-काँप कर,

वह भी अपनी मातृभूमि पर
कर लेता है प्राण निछावर ।५।

तुम तो हे प्रिय बन्धु ! स्वर्ग-सी
सुखद सकल विभवों की आकर,
धरा - शिरोमणि मातृभूमि में
धन्य हुए हो जीवन पाकर ।

तुम जिसका जल-अन्न ग्रहण कर
बड़े हुए लेकर जिसकी रज ।
तन रहते कैसे तज दोगे,
उसको हे वीरों के वंशज ।६।

जब तक साथ एक भी दम हो,
हो अवशिष्ट एक भी धड़कन;
रखो आत्म - गौरव से ऊँची
पलकें, ऊँचा सिर, ऊँचा मन ।

एक बूँद भी रक्त शेष हो
जब तक तन में हे शत्रुंजय !
दीन वचन मुख से न उचारो ।
मानों नहीं मृत्यु का भी भय ।७।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. अपने शब्दों में स्वदेश की महिमा का वर्णन कीजिए ।

: १९ :

दानवीर कर्ण

[रामधारीसिंह 'दिनकर']

आपका जन्म १९०८ में हुआ। अपनी ओजस्वी वाणी से हिन्दी-जगत् में नव-जागरण करनेवाले कवियों में 'दिनकर' जी का स्थान बहुत महत्त्व का है। 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी,' 'उर्वशी' आपके महाकाव्य हैं। अन्य काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने 'संस्कृति के चार अध्याय' और 'अर्धनारीश्वर' नामक गद्य ग्रन्थ भी लिखे हैं।

प्रस्तुत अवतरण 'रश्मिरथी' में से है। इसमें कर्ण के उदात्त चरित्र का चित्रण बड़ी ही उत्तमता और सहानुभूति से किया गया है।

कहा कर्ण ने, कौन उधर है ? बन्धु, सामने आओ,
मैं प्रस्तुत हो चुका, स्वस्थ हो, निज आदेश सुनाओ।
अपनी पीड़ा कहो, कर्ण सबका विनीत अनुचर है,
यह विपन्न का सखा तुम्हारी सेवा में तत्पर है।

माँगो, माँगो दान, अन्न या वसन, धाम या धन दूँ ?
अपना छोटा राज्य याकि यह क्षणिक, क्षुद्र जीवन दूँ ?
मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।

पर का दुःख हरण करने में ही अपना सुख माना,
भाग्यहीन मैंने जीवन में और स्वाद क्या जाना ?
आओ उऋण बनूँ तुमको भी न्यास तुम्हारा देकर,
उपकृत करो मुझे अपनी संचित निधि मुझसे लेकर।

अरे कौन है भिक्षु यहाँ पर ? और कौन दाता है ?
अपना ही अधिकार मनुज नाना विधि से पाता है।
कर पसार कर जब भी तुम मुझसे कुछ ले लेते हो,
तृप्त भाव से हेर मुझे क्या चीज नहीं देते हो ?

दीनों का सन्तोष, भाग्यहीनों की गद्‌गद वाणी,
नयनकोर में भरा लबालब कृतज्ञता का पानी,
हो जाना फिर हरा युगों से मुरझाये अधरों का,
पाना आशीर्वचन, प्रेम, विश्वास अनेक नरों का।

इससे बढ़कर और प्राप्ति क्या जिस पर गर्व करें हम ?
पर को जीवन मिले अगर तो हँसकर क्यों न मरें हम ?
मोल-तोल कुछ नहीं, माँग लो जो कुछ तुम्हें सुहाये,
मुँहमाँगा ही दान सभी को हम हैं देते आये।

गिरा गहन सुन चकित और मन-ही-मन कुछ भरमाया।
लता-ओट से एक विप्र सामने कर्ण के आया।
कहा कि जय हो, हमने भी है सुनी सुकीर्ति-कहानी,
नहीं आज कोई त्रिलोक में कहीं आप-सा दानी।

नहीं फिराते, एक बार जो कुछ मुख से कहते हैं,
प्रणपालन के लिए आप बहु भाँति कष्ट सहते हैं।
आश्वासन से ही अभीत हो सुख विपन्न पाता है,
कर्णवचन सर्वत्र कार्यवाचक माना जाता है।

लोग दिव्य शत-शत प्रमाण निष्ठा के बतलाते हैं।
शिवि-दधीच-प्रह्लाद कोटि में आप गिने जाते हैं।
सबका है विश्वास, मृत्यु से आप न डर सकते हैं,
हँसकर प्रण के लिए प्राण न्योछावर कर सकते हैं।

ऐसा है तो मनुज-लोक, निश्चय, आदर पायेगा,
स्वर्ग किसी दिन भीख माँगने मिट्टी पर आयेगा।

किन्तु भाग्य है बली, कौन किससे कितना पाता है,
यह लेखा नर के ललाट में ही देखा जाता है।

क्षुद्र पात्र हो मग्न कूप में जितना जल लेता है,
उससे अधिक वारि सागर भी उसे नहीं देता है।
अतः व्यर्थ है देख बड़ों को बड़ी वस्तु की आशा,
किस्मत भी चाहिए, नहीं केवल ऊँची अभिलाषा।

कहा कर्ण ने, वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खड़ा उसे पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य में खूब जानता हूँ मैं,
बाँहों को पर, कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं।

महाराज, उद्यम से विधि का अंक उलट जाता है।
किस्मत का पासा पौरुष से हार पलट जाता है।
और उच्च अभिलाषाएँ तो मनुज-मात्र का बल है,
जगा-जगाकर हमें वही तो रखती नित चंचल है।

आगे जिसकी नजर नहीं, वह भला कहाँ जायेगा ?
अधिक नहीं चाहता, पुरुष वह कितना धन पायेगा ?
अच्छा, अब उपचार छोड़ बोलिए, आप क्या लेंगे,
सत्य मानिए जो माँगेंगे आप, वही हम देंगे।

मही डोलती और डोलता नभ में देव-निलय भी,
कभी-कभी डोलता समर में किंचित् वीर-हृदय भी,
डोले मूल अचल पर्वत का, या डोले ध्रुवतारा
सब डोलें, पर, नहीं डोल सकता है वचन हमारा।

भली-भाँति कसकर दाता को बोला नीच भिखारी,
धन्य-धन्य राधेय, दान के अति अमोघ व्रतधारी।
ऐसा है औदार्य, तभी तो कहता प्रति याचक है,
महाराज का वचन सदा, सर्वत्र क्रियावाचक है।

मैं सब कुछ पा गया प्राप्त कर वचन आपके मुख से,
अब तो मैं कुछ बिना लिए भी जा सकता हूँ सुख से।
क्योंकि माँगना है जो कुछ उसको कहते डरता हूँ,
और साथ ही, एक द्विधा का भी अनुभव करता हूँ।

कहीं आप दे सके नहीं जो कुछ मैं धन माँगूँगा,
मैं तो भला किसी विधि अपनी अभिलाषा त्यागूँगा;
किन्तु, आपकी कीर्ति-चाँदनी फीकी हो जायेगी,
निष्कलंक विधु कहाँ दूसरा फिर वसुधा पायेगी ?

है सुकर्म क्या संकट में डालना मनस्वी नर को ?
प्रण से डिगा आपको, दूँगा क्या उत्तर जग-भर को ?
सब कोसेंगे मुझे कि मैंने पुण्य मही का लूटा,
मेरे ही कारण अभंग प्रण महाराज का टूटा।

अतः, विदा दें मुझे, खुशी से मैं वापस जाता हूँ।
बोल उठा राधेय, आपको मैं अद्भुत पाता हूँ।
सुर हैं याकि यक्ष हैं अथवा हरि के मायाचर हैं,
समझ नहीं पाता कि आप नर हैं या योनि इतर हैं।

भला कौन-सी वस्तु आप मुझ नश्वर से माँगेंगे,
जिसे नहीं पाकर निराश हो अभिलाषा त्यागेंगे ?
गौ, धरती, धन, धाम, वस्तु जितनी चाहें दिलवा दूँ,
इच्छा हो तो शीश काटकर पद पर यहीं चढ़ा दूँ।

या यदि साथ लिवा चाहें जीवित, सदेह मुझको ही,
तो भी वचन तोड़कर हूँगा नहीं विप्र का द्रोही।
चलिए, साथ चलूँगा मैं साकल्य आपका ढोते,
सारी आयु बिता दूँगा चरणों को धोते-धोते।

वचन माँगकर नहीं माँगना दान बड़ा अद्भुत है,
कौन वस्तु है जिसे न दे सकता राधा का सुत है ?

विप्रदेव ! माँगिए छोड़ संकोच वस्तु मन चाही,
मरूँ अयश की मृत्यु करूँ यदि एक बार भी नाहीं ।

सहम गया सुन शपथ कर्ण की, हृदय विप्र का डोला,
नयन झुकाये हुए भिक्षु साहस समेटकर बोला,
धन की लेकर भीख नहीं मैं घर भरने आया हूँ,
और नहीं नृप को अपना सेवक करने आया हूँ ।

यह कुछ मुझको नहीं चाहिए, देव, धर्म को बल दें;
देना हो तो मुझे कृपा कर कवच और कुण्डल दें ।
कवच और कुण्डल ! विद्युत् छू गई कर्ण के तन को,
पर, कुछ सोच रहस्य कहा उसने गम्भीर कर मन को ।

समझा तो यह और न कोई, आप स्वयं सुरपति हैं,
देने को आये प्रसन्न हो तप में नई प्रगति हैं ।
धन्य हमारा सुयश आपको खींच मही पर लाया,
स्वर्ग भीख माँगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया ।

क्षमा कीजिए, इस रहस्य को तुरत न जान सका मैं,
छिपकर आये आप, नहीं इससे पहचान सका मैं ।
दीन विप्र ही समझ कहा, धन, धाम, धरा लेने को,
था क्या मेरे पास अन्यथा सुरपति को देने को ?

केवल गन्ध जिन्हें प्रिय, उनको स्थूल मनुज क्या देगा ?
और व्योमवासी मिट्टी से दान भला क्या लेगा ?
फिर भी देवराज भिक्षुक बनकर यदि हाथ पसारें,
जो भी हो, पर, इस सुयोग को हम क्यों अशुभ विचारें ?

अतः, आपने जो माँगा है, दान वही मैं दूँगा,
शिवि-दधीचि की पंक्ति छोड़कर जग में अयश न लूँगा ।
पर, कहता हूँ मुझे बना निस्त्राण छोड़ते हैं क्यों ?
कवच और कुण्डल ले करके प्राण छोड़ते हैं क्यों ?

यह, शायद, इसलिए कि अर्जुन जिये, आप सुख लूटें,
व्यर्थ न उसके सर अमोघ मुझ पर टकराकर टूटें।
उधर करें वह भाँति पार्थ की स्वयं कृष्ण रखवाली,
और इधर मैं लड़ूँ लिए यह देह कवच से खाली।
तनिक सोचिए, वीरों का यह योग्य समर क्या होगा ?
इस प्रकार से मुझे मारकर पार्थ अमर क्या होगा ?
एक बाज का पंख तोड़कर करना अभय अपर को,
सुर को शोभे भले, नीति यह नहीं शोभती नर को।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. कर्ण और ब्राह्मण की बातचीत से कर्ण के बारे में आपका क्या मत बनता है ?

: २० :

सावन

[सुमित्रानन्दन पन्त]

पन्तजी छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि और कलाकार हैं। आपकी कविता पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गहरी छाप है। अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियों की भाँति आपने काव्य का बहुत ही सुरम्य चित्रण किया है। आपकी भाषा कोमल और मधुर भावों का वहन करने में पूर्ण रूप से समर्थ है। 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'गुंजन', 'पल्लव', 'पल्लविनी' आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। 'ग्राम्या,' और 'युगवाणी' पर समाजवादी प्रभाव स्पष्ट है। बाद के ग्रन्थों में महात्मा गान्धी तथा श्री अरविन्द के दर्शन के प्रभाव भी दृष्टिगोचर होते हैं। आपका जन्म सन् १९०० में अलमोड़ा जिले में हुआ।

प्रस्तुत पद्य खण्डों में आपके काव्य की दोनों काव्य-धाराओं की विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

झम-झम झम-झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम-छम-छम गिरती बूँदें तरुओं से छन के!
चम-चम बिजली चमक रही रे उर में घन के,
थम-थम दिन के तम में सपने जगते मन के।

ऐसे पागल बादल बरसे नहीं धरा पर,
जल फुहार बौछारें धारें गिरतीं झर-झर!
आँधी हर-हर करती, दल मर्मर, तरु चर्-चर्,
दिन रजनी औ' पाख बिना तारे शशि दिनकर!

पंखों से रे, फैले-फैले ताड़ों के दल,
लम्बी-लम्बी अँगुलियाँ हैं, चौड़े करतल।

तड़-तड़ पड़ती धार वारि की उन पर चंचल,
टप-टप झरतीं कर मुख से जल बूँदें झलमल !
नाच रहे पागल हो ताली दे-दे चल-दल,
झूम-झूम सिर नीम हिलाती सुख से विह्वल !
हरसिंगार झरते, वेला कलि बढ़ती पल-पल,
हँसमुख हरियाली में खग-कुल गाते मंगल ?

दादुर टर-टर करते, झिल्ली बजतीं झन-झन,
म्याऊँ-म्याऊँ रे मोर, पीउ-पीउ चातक के गण !
उड़ते सोन बलाक आर्द्र सुख से कर क्रन्दन,
घुमड़-घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन !

वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन,
प्रणयातुर शत कीट विहग करते सुख गायन !
मेघों का कोमल तम श्यामल तरुओं से छन !
मन में भू की अलस लालसा भरता गोपन !

रिमझिम-रिमझिम क्या कुछ कहते बूँदों के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर अन्तर !
धाराओं पर धाराएँ झरतीं धरती पर,
रज के कण-कण में तृण-तृण की पुलकावलि भर !

पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेरकर गाओ सावन !
इन्द्रधनुष के झूले में झूलें मिल सब जन,
फिर-फिर आये जीवन में सावन मनभावन !

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. सावन के आनन्द का अपने शब्दों में वर्णन करो ।

: २१ :

हल

[सुमित्रानन्दन पन्त]

जन-धरणी का बल है हल,
जन-मन का सम्बल है हल !
साथी सगे हथौड़े-हँसिया
जिसके कर्मठ, कला-कुशल।

पृथ्वी का पैगम्बर बन हल आया,
नवल सभ्यता का प्रभात सँग लाया,
हल ने चीर जमीं का सीना
मानव का घर-द्वार बसाया !

स्वर्ण-धरा का बल है हल
जनता का सम्बल है हल,
साथी सबल हथौड़े-हँसिया
जिसके कर्मठ, कला-कुशल !

लौह नियत को ठोंक-पीटकर प्रतिक्षण
घन ने निर्मित किया महत् जग-जीवन
लुन-लुनकर नित शस्यों के स्वर्णिम कण
हँसिये ने हँस भरा भाँड में भूधन !

कठिन तपों का फल है हल,
प्रथम कलों की कल है हल,
जीवन की रोटी, धरती का
राजा अटल - अचल है हल !

मातृभूमि का बल है हल,
जनगण का सम्बल है हल,
भाई सगे हथौड़े - हँसिया
जिसके कर्मठ, कला-कुशल ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. सभ्यता के विकास में किसान और मजदूर के सहयोग-दान का वर्णन करो ।

: २२ :

बालिका का परिचय

[सुभद्राकुमारी चौहान]

वीर रस तथा वात्सल्य रस की कविता लिखने में सुभद्राकुमारी चौहान बहुत सिद्धहस्त थीं। आपने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। आपकी सभी कविताओं में मस्तीभरी भावना कूट-कूट कर भरी हुई है।

आपका जन्म १६०४ में तथा मृत्यु १६४७ में हुई।

माँ के लिए बालिका किस प्रकार समग्र जीवन का केन्द्र बन जाती है, वही उसका जग होता है और वही उसका भगवान्। इसी का भावनामय वर्णन इस कविता में किया गया है।

यह मेरी गोदी की शोभा
सुख सुहाग की है लाली।
शाही शान भिखारिन की है
मनोकामना मतवाली।।
दीप-शिखा है अन्धकार की
घनी घटा की उजियाली।
ऊषा है यह कमल भृङ्ग की
है पतझड़ की हरियाली।।
सुधा धार यह नीरस दिल की
मस्ती मगन तपस्वी की।
जीवित ज्योति नष्ट नयनों की
सच्ची लगन मनस्वी की।।
बीते हुए बालपन की यह

क्रीड़ापूर्ण वाटिका है ।
वही मचलना, वही किलकना,
हँसती हुई नाटिका है ।
मेरा मन्दिर, मेरी मसजिद,
काबा-काशी यह मेरी ।
पूजा-पाठ, ध्यान जप-तप है
घट-घटवासी यह मेरी ॥
कृष्णचन्द्र की क्रीड़ाओं को
अपने आँगन में देखो ॥
कौशल्या के मातृमोद को
अपने ही मन में लेखो ॥
प्रभु ईसा की क्षमाशीलता
नबी मुहम्मद का विश्वास ।
जीव-दया जिनवर गौतम की
आओ देखो इसके पास ॥
परिचय पूछ रहे हो मुझसे
कैसे परिचय दूँ इसका ।
वही जान सकता है इसको
माता का दिल है जिसका ॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'बालिका का परिचय' नामक कविता में कवयित्री ने कहा है—

'प्रभु ईसा की क्षमाशीलता
आओ देखो इसके पास ।'

इसमें क्या भाव है ?

२. बालिका में माँ की कौन-सी भावनाएँ केन्द्रित होती हैं।

: २३ :

एक गीत

[बच्चन]

आधुनिक कवियों में बच्चन अत्यन्त लोकप्रिय कवि हैं। आपके गीत बड़े ही भावपूर्ण और मधुर होते हैं। एक तरफ जहाँ 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' में आपने मस्ती भरे गीत गाए हैं दूसरी तरफ 'निशा-निमंत्रण' और 'एकान्त-संगीत' में दिल को मसोसने वाले दर्दीले गीत भी। आपकी भाषा और छन्दों से मन मोह लेने की प्रबल शक्ति है। आपका जन्म १९०७ में हुआ।

प्रस्तुत गीत कवि-जीवन के निरालेपन की व्याख्या करता है। इसीलिए कवियों में समझदारी कम और एक प्रकार का पागलपन अधिक पाया जाता है। इनके जीवन-मूल्य ही अलग होते हैं।

जग ने थोड़ा-थोड़ा चाहा,
थोड़े में ही काम निबाहा,
लेकिन अपनी इच्छाओं को मैंने सीमाहीन बनाया।
मैं जग से कुछ सीख न पाया।

जग ने जो दिन-बीच कमाया,
उसे निशा में किया सवाया,
मैंने जो दिन को जोड़ा था, उसको मैंने शाम गँवाया।
मैं जग से कुछ सीख न पाया।

जग ने जो प्रतिमा ठुकराई,
झुककर उसके आगे आई,
फिर-फिर झुका उसी वेदी पर जहाँ गया फिर-फिर ठुकराया।
मैं जग से कुछ सीख न पाया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. कवि का दृष्टिकोण किस प्रकार अव्यावहारिक होता है ?

: २४ :

सूरदास के पद

[सूरदास]

सूरदास हिन्दी के महाकवि थे। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनके पदों का संग्रह 'सूरसागर' कहलाता है। इसमें कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन बड़े मनोहर ढंग से किया गया है। इसी प्रकार इनकी मुरली, रासलीला, भ्रमर गीत इत्यादि भी ब्रज साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

जन्म १४८३; मृत्यु १५६३।

मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे, मधुबन मोहिं पठायो।
चार पहर वंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो।
मैं बालक बहियन को छोटो, सींको केहि विधि पायो।
ग्वाल-बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मति की अति भोरी, इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपजि है; जानि परायो जायो।
यह लै अपनी लकुट कमरिया बहुतै नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जसौदा लै उर-कंठ लगायो।

मैया कबहि बढ़ैगी चोटी।
किती बार तोहि दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त, गुहत, नहावत, ओंछत, नागिन-सी भुइँ लोटी।
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
सूर स्याम चिरजिवो दोउ हरि भैया हलधर की जोटी।

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत—मोल को लीनो, तोहिं जसुमति कब जायो ?
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर ?
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर ।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत ।
'सूर' स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ।

सँदेसौ देवकी सों कहियो ।
हौं तो धाइ तुम्हारे सुत की मया करति नित रहियो ।
जदपि टेव तुम जानति उनकी तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रातहिं उठत तुम्हारे कान्हहिं माखन-रोटी भावै ।
तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देख भजि जाते ।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करि करि न्हाते ।
सूर पथिक, सुनि, मोहिं रैन दिन बढ़यो रहत उर सोच ।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सँकोच ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. सूर के वात्सल्य रस पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखिए ।

: २५ :

परशुराम-लक्ष्मण संवाद

[तुलसीदास]

आपको हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। वस्तुतः आपकी प्रतिमा विश्व-कवियों की प्रतिभा की बराबरी करती है। 'रामचरित-मानस' आपका जगत् प्रसिद्ध महाकाव्य है। 'विनयपत्रिका' पदों का संग्रह है और तुलसी की भक्ति की खान। आपके जीवनकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। आमतौर पर आप का जीवनकाल सन् १५३२ से १६२३ तक माना जाता है।

प्रस्तुत पाठ 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड से लिया गया है। इस से तुलसी की नाटकीय प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है। इसके संवाद हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण होते हैं। इससे पता चलता है कि ये मानव-हृदय के सच्चे पारखी थे। लक्ष्मण और परशुराम की चरित्रगत विशेषताएँ इस पाठ से स्पष्ट होती हैं। परशुराम क्रोधी, क्रूर और अहंकार से भरे हुए हैं। लक्ष्मण उन पर तीखे वचनों से प्रहार करते है। राम अपनी नम्रता और मधुरता से परिस्थिति को सँभाल लेते हैं।

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥
अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥

सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु।
हृदय न हरषु बिषादु कछु, बोले श्री रघुबीर॥

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होवहि कोउ इक दास तुम्हारा॥
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥

सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने । बोले परसुधरहि अपमाने ।।
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं । कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू । सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू ।।

रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न सँभार ।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, बिदित सकल संसार ।।

लखन कहा हँसि हमरें जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ।।
का छति लाभु जून धनु तोरें । देखा राम नयन के भोरें ।।
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू । मुनि बिनु काज, करिअ कत रोसू ।।
बोले चितइ परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ।।
बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही । केवल मुनि जड़ जानहि मोही ।।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही ।।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ।।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा । परसु बिलोकु महीपकुमारा ।।

मातु पितहि जनि सोचबस, करसि महीपकिसोर ।
गर्भन्ह के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ।।

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी । अहो मुनीसु महा भटमानी ।।
पुनि-पुनि मोहि देखाव कुठारू । चहत उड़ावन फूँकि पहारू ।।
कौशिक सुनहु मन्द यहु बालकु । कुटिल काल बस निज कुल घालकु ।।
काल कवलु होइहि छिन माही । कहऊँ पुकारि खोरि मोहिं नाहीं ।।
लखन कहउ मुनि सुजसु तुम्हारा । तुम्हहिं अछत को बरनै पारा ।।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ।।

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर करहिं प्रलापु ।।

सुनत लखन के बचन कठोरा । परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ।।
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू । कटुवादी बालक बध जोगू ।।

लखन उतर आहुति सरिस, भृगुवर कोपु कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुलभानु ।।

नाथ करहु बालक पर छोहु । सूध दूधमुख करिअ न कोहू ।।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ।।
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ।।
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने ।।
हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी । राम, तोर भ्राता बड़ पापी ।।
थर थर काँपहिं पुर नर नारी । छोट कुमार खोट अति भारी ।।
भृगुपति सुनि-सुनि निरभय बानी । रिस तन जरइ होइ बल हानी ।।
बोले रामहि देइ निहोरा । बचउ विचारि बन्धु लघु तोरा ।।

सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नैन तरेरे राम ।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ।।

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक बचनु करिअ नहिं काना ।।
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे । अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे ।।
देखु जनक हठि बालकु एहू । कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ।।
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा । देखत छोट खोट नृप ढोटा ।।
बिहँसे लखनु कहा मन माहीं । मूँदें आँख कतहुँ कोउ नाहीं ।।

परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु ।
संभु सरासनु तोरि सठ, करसि हमार प्रबोधु ।।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठारु आगे यह सीसा ।।
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. परशुराम और लक्ष्मण के चरित्रों पर इस पाठ से क्या प्रकाश पड़ता है ?

: २६ :

कबीर के दोहे

[कबीर]

कबीर अनपढ़ थे, फिर भी उनकी गणना हिन्दी के प्रमुख कवियों में होती है। आपकी वाणी, साखी, रमैनी तथा बीजक आदि में संग्रहीत मिलती है। उनमें ईश्वर के निर्गुण रूप की शब्द-द्वारा सहज साधना का भक्तिपूर्ण वर्णन है। अपनी सरल स्वाभाविक वाणी में उन्होंने जीवन के अनेक अनुभवों को कविता में अभिव्यक्त किया है। मुसलमान होने पर भी उनमें कोई धार्मिक कट्टरता नहीं आई। धर्म की रूढ़ियों का खण्डन करके उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों के दिलों की दूरी को कम करने का प्रयत्न किया। जन्म १३६६, मृत्यु १५२७।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवाँ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि ॥१॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥२॥
माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, काल हमारी बार ॥३॥
जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥४॥
अगिन आँच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार।
नेह-निभावन एक रस, महा कठिन ब्यौहार ॥५॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपहु शीतल होय ॥६॥

जिन ढूंढ़ा तिन पाइयाँ, गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ ।।७।।
मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ।।८।।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न कोय ।।९।।
निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ।।१०।।
एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ।।११।।
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं, हरिजन हरि हीं देत ।।१२।।
सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐंचातानि ।।१३।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. कबीर के दोहों से आपको क्या सीख मिलती है ?

: २७ :

रहीम के दोहे

[रहीम]

अब्दुल रहीम खानखाना बैरम खाँ के पुत्र और अकबर के नवरत्नों में से थे। यह कृष्ण के परम भक्त थे। इनका सांसारिक ज्ञान बड़ा ऊँचा और गहरा था। यही कारण है कि इनके दोहे ज्ञान और नीति से भरपूर होते हैं। इनके एक-एक दोहे को एक-एक रत्न की उपमा देना अत्युचित न होगी। जन्म १५५३; मृत्यु १६२६।

रहिमन याचकता गहै, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूँ को भयो, बावन आँगुर गात ॥१॥
खीरा को मुँह काटिके, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुये मुखन की, चहिए यही सजाय ॥२॥
ओछो काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहे न कोय ॥३॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥४॥
ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय ॥५॥
रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥६॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को, मथै न माखन होय ॥७॥

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरै, मोती मानुस चून ।।८।।
गगन चढ़े फिर क्यों तिरै, रहिमन बहरी बाज ।
फेरि ग्राइ बन्धन परै, पेट ग्रधम के काज ।।९।।
जो रहीम सुख होत है, उपकारी के ग्रंग ।
बाँटनवारे के लगै, ज्यों मेहँदी को रंग ।।१०।।

ग्रभ्यासार्थ प्रश्न

१. रहीम के काव्यों में जीवन की किन-किन ग्रनुभूतियों का चित्रण हुग्रा है ?

: २८ :

मीरा के पद

[मीराबाई]

मीरा मारवाड़ की राजपुत्री और मेवाड़ की राजमहिषी थीं। लेकिन इनका जीवन बचपन से राजसी ठाठबाट से दूर भक्ति-सम्पन्न रहा। यह भगवान् कृष्ण की उपासिका थीं और सन्त जनों से मिलकर भगवान का भजन किया करती थीं। इन गीतों में मीरा के हृदय के सच्चे उद्गार प्रकट हुए हैं। इनमें संवेदना है, टीस है, कसक है। मीरा की कविता में व्रज, राजस्थानी और गुजराती तीनों बोलियों का मेल है। मीरा का जन्म सन् १५०२ में और मृत्यु १५७३ में हुई।

(१)

मेरो तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई॥
छाँड़ि दइ कुल की कानि कहा करिहै कोई।
सन्तन ढिग बैठि-बैठि लोक लाज खोई॥
चुनरी के किए टूक आप लीन्ह लोई।
मोती मूँगे उतार वन-माला पोई॥
अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई आनन्द फल होई॥
भगत देखि राजी हुई जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरिधर, तारो अब मोही॥

(२)

प्रभु से मिलना कैसे होय ?
पाँच पहर धन्धे में बीते, तीन पहर रहे हैं सोय॥

मानुष जनम अमोलक पायो, सो तें सबही डार्यो खोय।
मीरा के प्रभु गिरिधर भजिए, होनी होय सो होय ॥

(३)

पग घुंघरू बांध मीरा नाची, रे !
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी, रे ॥
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात, कहैं कुल नासी, रे ॥
विष का प्याला रानाजी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी, रे ॥
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अविनासी रे ॥

(४)

मैं गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ॥
रैण पड़े तब ही उठ जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके सँग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ ॥
जो पहरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण विनु पल न रहाऊँ ॥
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर वार-वार बलि जाऊँ ॥

(५)

दरस विन दूखण लागे नैन।
जब से तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहूँ न पायो चैन ॥
सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपें, मीठे-मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत ऐन ॥
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण ॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. **मीरा की भक्ति भावना को अपने शब्दों में लिखिए।**

: २६ :

बिहारी के दोहे

[बिहारीलाल]

बिहारी के दोहे देखने में तो छोटे लगते हैं लेकिन उनमें पाठक के मन को छू लेने की अद्भुत शक्ति है। अपने दोहों में जैसे उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। कोमल और सरस ब्रजभाषा में उन्होंने सौन्दर्य, प्रकृति तथा भक्ति का अनुपम चित्रण पेश किया है। केवल ७१६ दोहों के बल पर कोई महाकवि बन जाए इसके सिर्फ बिहारी ही उदाहरण हैं। प्रत्येक दोहा रस, अलंकार तथा मधुरिमा से परिपूर्ण हिन्दी-साहित्य की स्थायी निधि है। जन्म सन् १५६५; मृत्यु सन् १६६४।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै श्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्जलु होय ॥१॥

बड़े न हूजै गुनन बिनु, बिरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सो कनकु, गहनौं गढ़्यौ न जाइ ॥२॥

सीस-मुकुट, कटि काछनी, कर-मुरली उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल ॥३॥

को कहि सकै बड़ेन सों, लखे बड़ी यै भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारिन ये फूल ॥४॥

बुरौ बुराई जो तजै, तौ मन खरौ सकात।
ज्यौं निकलंक मयंक लखि, गनैं लोग उतपात ॥५॥

कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
यह खाये बौराय जग, वह पाये बौराय ॥६॥

समै समै सुन्दर सबै, रूप, कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितो, तित तेती रुचि होइ ॥७॥
मीत न नीत, गलीत यह, जो धरिये धन जोर।
खायें-खरचै जौ जुरे, तौ जोरिये करोरि ॥८॥
दिन दस आदर पाइकै, करि लै आपु बखान।
जो लगि काग सराध-पख, तौ लगि तव सनमान ॥९॥
कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग, बाघ।
जगत तपोवन सौं कियौ, दीरघ दाघ निदाघ ॥१०॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. बिहारी के दोहों से आपको उनके व्यक्तित्व का क्या परिचय मिलता है ?

: ३० :

भूषण के कवित्त

[भूषण]

वीररस की कविताएँ लिखने में भूषण बेजोड़ हैं। आप शिवाजी के दरबारी कवि थे। 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' इत्यादि आपके मुख्य ग्रन्थ हैं। आपकी भाषा में अरबी, फारसी, बुन्देलखण्डी आदि के शब्दों का प्रयोग हुआ है जिससे भाषा ओजगुण युक्त हो गई है। कविता और सवैया आपके प्रधान छन्द हैं। हिन्दू समाज की हीन अवस्था, मुगलों का अत्याचार, शिवाजी का शौर्य आदि भूषण की कविता के आधार हैं।

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं तै वै तीन बेर खाती हैं॥
भूखन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥१॥

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खड़ो कियो छ-हजारिन के नियारे।
जानि गैरमिसिल, गुसीला गुस्सा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे॥
'भूखन' भनत महावीर बलकत लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह-मुख नौरँग, सिपाह मुख-पियरे॥२॥

पूरब के, उत्तर के, प्रबल पछाँहहू के,
सब बादसाहन के गढ़ कोट हरते ।
'भूखन' कहै यों अवरंगसों वजीर, जीत,
लेवेको पुरतगाल सागर उतरते ।।
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत, हम मरिबे को नाहीं डरते ।
चाकर हैं, उजुर कियौ न जाय नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते ।।३।।
जोर करि जैहैं अब अपर नरेश पर,
तोरि अरि खंड-खंड सुभट समाज-पै,
'भूखन' आसाम रूप बलख बुखारे जैहैं,
जैहैं साम, चीन तरि जलधि जहाज-पै ।।
सब उमरावन की हठ कूरताई देखो,
कहैं नवरंगजेब साहि सिरताज-पै ।
भीख माँग खैहैं, बिन मनसब रैहैं, पै न
जैहैं, हजरत, महाबली सिवराज-पै ।।४।।
दारा की न दौरि यह, रारि नहिं खजुवे की,
बाँधिबो नहीं है मुरादिशाह बालको ।
मठ बिस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ।।
गाढ़े गढ़ लीन्हे, अरु बैरी कतलाम कीन्हें,
ठौर-ठौर हासिल उगाहत है साल को ।।
बूड़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिल्लीपति;
धक्का आनि लाग्यौ सिवराज महाकाल को ।।५।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. भूषण के काव्य में देश-भक्ति किस प्रकार कूट-कूटकर भरी हुई है ?

कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणी

गद्य-खण्ड

१. श्रम का महत्व

तिजारत—व्यापार। **कलों**—मशीनों । **पुनरावृत्ति**—दोहराना । ध्रुपद और मल्हार—संगीत के राग । **जन्मदात्री**—जन्म देनी वाली । पूर्वज्ञान—पूर्वाभास । मूक—बेजबान । मात करना—हराना । **निर्वाण**—मोक्ष । छिछोरेपन—ओछापन ।

२. परीक्षा

मन्दाग्नि—पेट की बीमारी, जिसमें पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है। चोगा - पैरों तक लटकता हुआ ढीला पहनावा । **एमामे**—पगड़ियाँ । सनद--प्रमाण-पत्र । **हक्सले**—एक अंग्रेजी वैज्ञानिक, जिसने 'नेचुरल सेलेक्शन' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। **धर्मनिष्ठा**—धर्म पर आस्था । **कंटोप**—एक प्रकार की टोपी जिस से सिर और कान ढके जाते हैं। **अङ्गरखा**—घुटनों तक लम्बा पहनावा ।

३. आत्म-निर्भरता

प्रज्ञा—बुद्धि । **जिज्ञासु**—ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला । **अध्यवसायी**—परिश्रमी, उद्योगी । **मर्यादापूर्वक**—नियमबद्ध ।

एकलव्य—महाभारत का एक पात्र । इसका गुरु-प्रेम तथा इसकी लगन अनुपमेय है। भील-पुत्र होने के कारण यह द्रोणाचार्य का शिष्य न बन सका फिर भी एकान्त वन में द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर इसने धनुष-विद्या सीखी और स्वयं द्रोण को भी आश्चर्यचकित कर दिया। इसने गुरु-दक्षिणा के रूप में आचार्य द्रोण को अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर समर्पित कर दिया था।

'कहा मोको सीकरी सो काम'—अबुलफजल लिखित 'आइन-ए-अकबरी' में ऐसा उल्लेख है कि सम्राट् अकबर ने महाकवि सूर को आमन्त्रित किया था, पर सूर ने उपर्युक्त शब्द कहकर निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया था।

दूसरे का मुँह ताकना—विवश या चकित होकर देखना ।

४. न्याय-मन्त्री

मुख खिलना—प्रसन्न होना । **नाक-भौं चढ़ाना**—नापसन्दी प्रकट करना । **पैंतरा बदलकर**—चाल या युक्ति बदलकर । **कलेजा धड़कना**—भय से व्याकुल होना । **प्राण होठों तक आना**—मौत के नजदीक होना । **चारों ओर धूम मचाना**—प्रसिद्ध होना । **हाथों के तोते उड़ना**—बहुत घबरा जाना । **धाक बँध जाना**—रौब या दबाव होना । **बाल बाँका न होना**—कुछ भी कष्ट या हानि न पहुँचना ।

५. कर्त्तव्य और सत्यता

धनाढ्य—धनी । **अस्थिरता**—चंचलता, स्थिर न रहना । **कातरता**—कायरता । **कुत्सित**—नीच । **आडम्बर**—ढोंग । **हिचकिचाना**—किसी काम के करने में कुछ अनिच्छा, भय या संकोच के कारण न लगना । **असत्यपरता**—बेईमानी । **चाटुकारी**—खुशामद । **द्विविधा**—संशय, सन्देह ।

६. बिन्दा

उनींदी—नींद से भरी हुई, अलसायी । **बिछुआ**—पैर में पहनने का गहना । **दीदा**—दृष्टि, आँख, नजर । **नाटापन**—छोटा कद । **झिल्ली**—पारदर्शी पतली तह । **अवसन्न**—सुस्त, दुःखी । **आहत**—चोट खाया हुआ, घायल । **महारानी**—चेचक । **त्रिकालदर्शी**—तीनों कालों को जाननेवाला ।

७. घुमक्कड़-धर्म

घुमक्कड़—घूमने वाला । **तेली के कोल्हू के बैल की तरह**—पिटी-पिटायी लकीर पर चलने वाला । **दिग्दर्शक**—एक यन्त्र जिससे दिशाओं का ज्ञान होता है, कुतुबनुमा । **कूप-मण्डूक**—संकुचित विचार वाला । **अमित**—अपरिमित, बेहद, असीम । **बुद्धू**—बुद्धिहीन, मूर्ख । **दुराया**—छिपाया । **गैर**—पराया । **युक्ति**—तर्क, उपाय, तरकीब । **निर्द्वन्द्व**—बेरोक-टोक, स्वच्छन्द । **दिगम्बर**—दिशाएँ जिसके वस्त्र हैं, नग्न । **मुलम्मेवाले**—गिलट चढ़ाये हुए, नकली । **थोथी**—बेकार, व्यर्थ । **स्थावर**—स्थिर, जड़ । **जंगम**—चेतन, चलायमान । **बेकरार**—व्याकुल, विकल । **गला फाड़-फाड़कर**—बहुत जोर से चिल्लाकर । **झण्डी गाड़ना**—अधिकार कर

के चिन्ह स्वरूप झंडा स्थापित करना। **लात जमाना**—निरादर करना। **बोलबाला होना**—बहुत महत्त्व होना। **पैर तोड़कर बैठ जाना**—स्थायी तौर पर स्थित होना। **चिट्ठी-चिट्ठी उड़ा देना**—टुकड़े टुकड़े कर देना। **कमर बाँध लेना**—तैयार होना। **अवसर से हाथ धोना**—मौका निकल जाने देना।

८. छब्बीस जनवरी

छब्बीस जनवरी—भारतीय गणतन्त्र-दिवस, इसी तिथि से भारत का नया संविधान लागू किया गया था। **मेघमाला**—मेघ-समूह। **विदीर्ण करके**—नष्ट करके, फाड़ करके। **अविचल निष्ठा**—दृढ़ विश्वास। **कूटनीतिज्ञ**—चालबाज। **दम्भी**—दिखावा मात्र करने वाले। **निःशक्त**—कमजोर।

९. महापुरुष श्रीकृष्ण

अनुप्राणित—प्राण डाला हुआ, प्रेरणा दिया हुआ। **उत्पीड़न**—कष्ट, यातना। **लोकपीड़क**—संसार को दुःख पहुँचानेवाला। **ब्राह्मी स्थित**—ब्रह्म में लीन होने की दशा। **निपात**—विनाश। **विटप**—वृक्ष, पेड़। **सत्यंवद धर्मंचर**—सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो। **सूत्रपात**-—प्रारम्भ। **आतंक**—भय। **निरंकुश**—स्वेच्छाचारी।

१०. प्रायश्चित

करधनी—कई लड़ों का सूत जो कमर में पहना जाता है। **छक्के-पंजे**—चालबाजियाँ। **नदारद**—गायव। **परच जाना**—हिलमिल जाना। **औटाना**—खौलाना। **कुम्भीपाक नरक**—एक घोर नरक। **उलट जाना**—बेहोश होना।

११. विद्युत-तरंगों के चमत्कार

ईजाद करना—आविष्कार करना। **अपरिमित**—सीमा-रहित। **ऐन्द्रजालिक**—जादू की। **दिव्यदृष्टि**—अलौकिक दृष्टि। **अलादीन का चिराग**—(एक मुहावरा), अभिलषित वस्तु प्रदान करने वाला। **रश्मियाँ**—किरणें। **त्वचा**—खाल, शरीर के ऊपर की तह। **नियान**—एक गैस। **सरगर्मी**—तेजी के साथ। **वसीह पैमाने पर**—बड़े पैमाने पर। **रामबाण**—अचूक औषधि। **रोजमर्रा**—प्रत्येक दिन। **अनुसन्धान**—खोज। **चिकित्सा**—इलाज। **शोथ**—सूजन। **राजयक्ष्मा** तपेदिक।

१२. रामलीला

ऐरा-गैरा नत्थू खैरा—कोई भी तुच्छ आदमी। पैरोडी—मजाक, व्यंग्यचित्र। मिट्टी पलीत होना—दुर्दशा होना। आसमान का चाँद पा लेना—असम्भव काम कर लेना। सन्धान करना—निशाना लगाना।

१३. पृथ्वीराज की आँखें

साँकल—शृंखला। आखेट—शिकार। सूजे—सूए। मायूस—हताश। खुदकशी—आत्महत्या। मुस्तैदी—तत्परता, होशियारी।

१४. सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन

मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करना—खुलकर तारीफ करना। होनहार—अच्छे लक्षणों वाला, जिसके बढ़ने की आशा हो। जुट जाना—लग जाना।

१५. ताई

अर्द्धाङ्गिनी—पत्नी। चिढ़ी हुई—नाराज। चुहलबाजी—मसखरी, दिल्लगी। मुँह लगना—जवाब-सवाल करना। कलेजा सुलगना—दुःख या कष्ट होना। अपनी ही औटना—अपनी बात ही दोहराना। चोली-दामन का सम्बन्ध—घनिष्ठ सम्बन्ध। झेंपना—शरमाना, लजाना। निगोड़ा—बुरा। गिरगिट की तरह रंग बदलना—बहुत जल्दी भाव का बदलना। बल्लियों उछलना—परेशान होना। घी के चिराग जलाना—उत्सव मनाना।

पद्य-खण्ड

१६. एक बूँद

अनमनी—उदास। झिझकना—भय से एकदम रुक जाना।

१७. पंचवटी में

खिजाना—चिढ़ाना। ललकना—लालसा करना। लहकना—उत्कंठित होना। वैतालिक—स्तुति-पाठक। विहग—पक्षी। झड़ी—लगातार गिरने की क्रिया। हिमकणिका—बर्फ के बारीक कण। शुकसारी—तोता मैना। मनः प्रसाद—मन की प्रसन्नता। निराना—पौधों के आसपास की घास इत्यादि निकालना।

१८. स्वदेश-प्रेम

दिवाकर—सूर्य। निशाकर—चाँद। हिमगिरिवर—हिमालय।

अर्णवपोत—समुद्र की नाव। अवशिष्ट—बाकी। शत्रुंजय—शत्रु को जीतने वाला। सम्बल—सहारा।

१९. दानवीर कर्ण

विषन्न—दुःखी, संकटग्रस्त। गहन—गूढ़ अर्थवाली। शिवि—राजा उशीनर के पुत्र जो अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं। दधीचि—एक ऋषि जिसने अस्त्र बनाने के लिए इन्द्र को अपनी अस्थियों का दान दिया। प्रह्लाद—एक भक्त दैत्य जो राजा हिरण्यकशिपु का पुत्र था।

२०. सावन

घन—बादल। तम—अँधेरा। धरा—जमीन। पागल—मस्ती भरे। बौछार—बूँदों की झड़ी जो हवा के झोंके के साथ कहीं जा पड़े। फुहार—महीन बूँदों की झड़ी। पाख—पक्ष। हरसिंगार—एक पेड़ जिसके फूल में पाँच दल और नारंगी रंग की डाँडी होती हैं। दादुर—मेंढक।

२१. हल

सीना—छाती। कर्मठ—काम में चतुर। हँसिया—एक औजार जिससे खेत की फसल या तरकारी आदि काटी जाती है। घन—लोहारों का बड़ा हथौड़ा जिससे वे गरम लोहा पीटते हैं। चुनचुनकर—चुन-चुनकर।

२२. बालिका का परिचय

मनस्वी—बुद्धिमान व्यक्ति। किलकना—हर्ष-ध्वनि करना। जिनवर—जैन धर्म के प्रस्थापक, महावीर। नबी—पैगम्बर।

२३. एक गीत

प्रतिमा—मूर्ति। वेदी—किसी धार्मिक कार्य के लिए तैयार की गई उच्च भूमि।

२४. सूरदास के पद

मधुबन—व्रज का एक वन। बंसीबट—वृन्दावन में एक बरगद का पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते थे। सींको—छींका। गुहत—गूँथने पर। ओंछत—बालों में कंघी करना। पचि-पचि—प्रयत्न करके। चवाई—झूठा, चुगलखोर। धूत—चालबाज, छलिया। मया—दया। टेव—आदत, स्वभाव। अलक लड़ैता—लाड़ला।

२५. परशुराम-लक्ष्मण संवाद

भंजनिहारा—तोड़नेवाला। **सहसबाहु**—कार्त्तवीर्यार्जुन जो क्षत्रिय राजा कृतवीर्य का पुत्र था। **रिस**—क्रोध। **छति**—क्षति, नुकसान। **जून**—जीर्ण। **नयन**—नवीन। **भोरें**—भूल। **कोही**—क्रोधी। **महिदेवन्ह**—ब्राह्मणों को। **अर्भक**—शिशु। **कुल घालकु**—कुलनाशक। **कवलु**—ग्रास। **खोरि**—दोष। **छोहु**—कृपा। **अचगरि**—ज्यादती। **जुड़ाना**—ठंडा होना। **तरेरना**—अप्रसन्नता सूचक दृष्टि से देखना। **अनैसे**—बुरे भाव से। **ढोटा**—लड़का।

२६. कबीर के दोहे

मनुवाँ—मन। **सुमिरन**—जप। **परलै**—प्रलय। **कालि**—कल। **अगिन**—अग्नि। **करड़े**—सख्त। **अघाय**—तृप्त होना।

२७. रहीम के दोहे

आँगुर—अंगुली। **बारे**—जलने पर, बालकपन में। **बढ़े**—बुझाने पर, बड़ा होने पर। **अँसुवा**—आँसू। **सून**—शून्य। **ऊबरै**—उद्धार पाना। **तिरै**—पानी की सतह पर उतरना। **बहरीबाज**—बाज की तरह की एक चिड़िया।

२८. मीरा के पद

कानि—मर्यादा। **लोई**—एक तरह की ऊनी चादर। **पोई**—पिरोना। **अमोलक**—अमूल्य। **न्यात**—रिश्तेदार। **करवत**—आरा। **अैन**—राह।

२९. बिहारी के दोहे

बिरद—पदवी। **कनक**—धतूरा, सोना। **मयंक**—चाँद। **गलीत**—खराब, बुरी। **सराध पख**—श्राद्ध पक्ष। **कहलाना**—व्याकुल होना।

३०. भूषण के कवित्त

मन्दर—महल, पहाड़। **कन्द**—मिष्ठान्न, शकरकन्द, गाजर आदि कन्दमूल। **भूकन**—गहने, भूख। **बिजन**—पंखा, निर्जन वन। **नगन जड़ाती**—गहनों में नग जड़ाना, नंगे शरीर में जाड़ा खाती हैं। **गैर-मिसिल**—पंक्ति विरुद्ध; सरदारों की पंक्ति जैसी होनी चाहिए उसके विरुद्ध। **बलकन लाग्यो**—क्रुद्ध होकर जो जी में आये बोलना।